RNI. No. : DELHIN/2004/12377

प्रवासी संसार

देश-देशान्तर में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सेतु

वर्ष : 2, अंक : 1 जनवरी-मार्च 2005

संरक्षक
श्री अभिमन्यु अनत, मॉरीशस
डॉ॰ मोहन कां. गौतम, नीदरलैण्ड

सम्पादक
राकेश पाण्डेय

सम्पादकीय कार्यालय
5/23, गीता कॉलोनी
दिल्ली-110031
भारत
वेबसाइट : www.pravasisansar.com
ई-मेल : editor@pravasisansar.com
: rakeshpandey@epatra.com

दूरभाष
91+11-9312208845, 9810180765

मूल्य

एक प्रति : 50/-
वार्षिक मूल्य : 200/-
संस्थागत वार्षिक मूल्य : 225/-
विदेशों हेतु : 4$

प्रवासी संसार में प्रकाशित लेखों व व्यक्त विचार तथा दृष्टिकोण सम्बन्धित लेखकों के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। चैक या ड्राफ्ट द्वारा भुगतान प्रवासी संसार, दिल्ली के नाम देय है। पत्रिका से सम्बन्धित सभी विवाद दिल्ली स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रम

F सम्पादकीय 2
F प्रवासी संसार और आप 4

चिंतन लेख

F परदेसवा न जइयो सैयां सावन में... डॉ. रत्नाकर पाण्डेय 5

लेख

F प्रवासी दिवस, बहुत कुछ अनकहा रह गया... प्रो. मोहनकांत गौतम 7
F प्रवासी भारतीयों की वर्तमान पीढ़ी... तेजेन्द्र शर्मा 10
F विकास में लगी संस्थाएं उषा राजे सक्सेना 12
F भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप में विकास डॉ. परमानंद पांचाल 17
F नेपाल में हिंदी की संवैधानिक मान्यता की जोरदार मांग राजेश्वर नेपाली 19

अन्तर्मन से

F तन लंदन में, मन भारत में... डॉ. कृष्ण कुमार 21
F यह इंग्लैण्ड है भाई जी प्राण शर्मा 23

उपन्यास अंश

F टेम्स से जुमना तक श्रीमती संतोष श्रीवास्तव 24

व्यंग्य लेख

F बेशर्मी के शहंशाहो ! बटुक चतुर्वेदी 27

कहानी

F आम का पेड़ अभिमन्यु अनत 29

कविता

F सरस्वती वंदना प्रो. हरिशंकर आदेश 6
F ग़ज़ल तेजेन्द्र शर्मा 16
F ग़ज़ल 'विकल' साकेती 18
F हे ईश्वर ! राज हीरामन 22
F स्पर्श राकेश पाण्डेय 22
F रेखाएं स्वर्ण तलवाड़ 28
F होने दो गौतम सचदेव 28
F कैरेबियाई कविता और मार्टिन कार्टर अक्षय कुमार 34

साहित्यिक गतिविधियां

F सोनिया गांधी : राजनीति की पवित्र गंगा का लोकार्पण 37
F डॉ. मोहनकांत गौतम का अभिनंदन समारोह 38

प्रकाशक, मुद्रक तथा सत्वाधिकारी सुषमा पाण्डेय द्वारा 5/23, गीता कॉलोनी, दिल्ली-110031 से प्रकाशित एवं जी॰ आर॰ प्रिंटर्स, 9/3399, गांधी नगर, दिल्ली द्वारा मुद्रित।

lEikndh;

F राकेश पाण्डेय

वसुधैव कुटुम्बकम् के कुटुम्ब का अंग होने के नाते सुनामी लहरों ने नव वर्ष की मंगलकामनाओं को क्षीण कर दिया है। जिस कुटुम्ब के डेढ़ लाख से अधिक लोग प्राण गंवा चुके हों, चारों ओर हाहाकार मचा हो, पीने का पानी मयस्सर न हो रहा हो, दुधमुंहे बच्चों से मां का आंचल छिन चुका हो, अनेक मांएं, बेटियां, बहुएं अनाथ होकर सरकार व समाज के सहारे की मोहताज हो चुकी हों, जिनके मुंह तक निवाला नहीं पहुंच पा रहा हो, ऐसे में हमारी संवेदनाएं, हमारी सहानुभूति, हमारा सहयोग उस पूरे प्रभावित वर्ग को प्राप्त होना चाहिए। तभी वसुधैव कुटुम्बकम् की परिभाषा देने वाले इस देश की सार्थकता सिद्ध हो पाएगी।

जब पूरा विश्व क्रिसमस के पर्व से थककर निद्रा की गोद में लेटा हुआ था, अचानक सुनामी लहरों ने ऐसा तांडव मचाया कि पूरा विश्व कंपित व अचंभित है। ऐसी भीषण तबाही अकल्पनीय थी। मानव जाति को इसे प्रकृति का एक दण्ड समझना चाहिए जिसने कि हमें प्रकृति से छेड़छाड़ करने के प्रति आगाह किया है। हमारी दैनिक जीवन शैली इस प्रकार की होती जा रही है कि हम निरंतर प्रकृति के साथ अन्याय पर तुले रहते हैं। प्रकृति में कृत्रिम कभी समा नहीं सकता, वह कभी भी प्रकृति का पर्याय नहीं बन सकता। इसलिए हमें प्रकृति में हो रहे परिवर्तनों को समझना होगा और अपने पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाले कार्यों को रोकना होगा। नहीं तो इस प्रकार की तबाहियों का हमें अक्सर सामना करना ही पड़ेगा। सुनामी लहरों से पीड़ितों को मात्र हमारी संवेदनाएं ही नहीं चाहिए, उन्हें हमारा सहयोग सुचारु रूप से पहुंचना चाहिए। हमें अपनी यथाशक्ति से उनका सहयोग करना चाहिए। अभी प्रवासी दिवस पर लगभग दो हजार प्रवासी भारतीय भारत में आ रहे हैं, जिनसे हमारी अपील है कि वे यथासंभव पीड़ितों की सहायता हेतु सरकार को अपना सहयोग प्रदान करें। वैसे हमारे प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के वक्तव्य ने हमारा सिर गर्व से ऊंचा कर दिया है। उन्होंने कहा है कि हमें किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है। यह देश इस संकट से निपटने के लिए सक्षम है। बल्कि उन्होंने मालदीव व श्रीलंका में भारत की ओर से सहायता भी भेजी है। यह एक अति प्रशंसनीय कदम है।

हमारे देश की जनता को चाहिए कि सरकार व सामाजिक संस्थाओं द्वारा गठित कोषों में दिल खोलकर अपना आर्थिक सहयोग प्रदान करे। उन प्रभावित लोगों की सहायता ही सच्ची मानव सेवा है। अनेक फिल्मी कलाकार, खिलाड़ी सभी इन लोगों की सहायता के लिए आगे आ रहे हैं। यह एक मानवता के प्रति शुभ लक्षण है।

आगामी 7 से 9 जनवरी 2005 को तृतीय प्रवासी दिवस का आयोजन मुंबई में हो रहा है। सभी को आशा है कि गतवर्ष की भांति इस वर्ष निराशा नहीं होगी। हम कुछ सबक सीख चुके हैं; क्योंकि पहले विदेश मंत्रालय में प्रवासी मात्र एक विभाग था, अब पूरा भारी-भरकम मंत्रालय गठित हो चुका है। लेकिन खेद है कि अब तक यह मंत्रालय सुचारु रूप से अपना कार्यालय स्थापित नहीं कर पाया है। अनेक कार्य विदेश मंत्रालय पर निर्भर हैं। प्रवासी मंत्री श्री जगदीश टाईटलर के नेतृत्व में यह पहला प्रवासी दिवस आयोजित हो रहा है जिस पर कि सभी की निगाहें टिकी हुई हैं; किन्तु अभी तक जो कार्यक्रम प्रवासी दिवस के सामने आए हैं, उन्हें देखकर तो निराशा ही नजर आई है, क्योंकि विगत सरकार की भांति इनके पास भी भारतीय साहित्य एवं संस्कृति को लेकर कोई दृष्टि नहीं है। इनका समूचा कार्यक्रम डॉलर पर केंद्रित है। जब हम इतना बड़ा तीन दिवसीय आयोजन करते हैं तो क्या एक सत्र भारतीय भाषाओं व भारतीय संस्कृति को समर्पित नहीं हो सकता है, जिसके कारण ही ये समूचे प्रवासी भारत से जुड़े हुए हैं। अगर ये प्रवासी लंदन में रहकर हिंदी व अन्य भारतीय भाषाएं सीखते हैं तो अपनी रोजी-रोटी के लिए नहीं; बल्कि भारत से अपनत्व के नाते, अपनी उस पहचान के नाते जो उनके पूर्वजों से उन्हें मिली है। भले ही उनकी कई पीढ़ियां विदेशों में समाप्त हो गई हों; किन्तु प्रत्येक के पूर्वज ने भारतीय होने की भावना अपनी आगामी पीढ़ी के मन में कूट-कूट के भरी है। इसी का परिणाम है कि आज विदेशों में प्रधानमंत्री के पद तक पहुंचे हुए प्रवासी भारतीय भी एक सामान्य भारतीय की भांति यहां की गंगा, यहां के संगम में समाहित होने की इच्छा रखते हैं। किन्तु हमारी सरकार आर्थिक दृष्टिकोण को प्रमुखता से आगे कर इन सभी की भावनाओं को ठेस पहुंचाती है; क्योंकि इन प्रवासियों के पास भारतीय संस्कृति में सराबोर होने की एक अतृप्त प्यास है जिसे हमें समझना होगा, अन्यथा धीरे-धीरे यह प्रवासी भारतीय आयोजन अर्थहीन होकर व्यर्थ हो जाएगा। सरकार के बुलाने पर भी कोई यहां नहीं आएगा; क्योंकि यदि उन्हें मात्र अर्थ ही अर्जन करना है तो फिर भारत ही क्यों ? क्या यह हमारी उन प्रवासी भारतीयों की संवदेनाओं के साथ खिलवाड़ नहीं है ? प्रवासी दिवस आयोजन के उद्घाटन सत्र में सदैव किसी भी भारतवंशी बाहुल्य देश के प्रवासी को प्रमुखता से महिमामंडित किया जाता है, जैसे कि मॉरीशस के राष्ट्रपति श्री अनिरुद्ध जगन्नाथ, त्रिनिडाड के श्री वासुदेव पाण्डेय, फिजी के श्री महेन्द्र चौधरी, गयाना के प्रधानमंत्री श्री भरत जगदेव आदि, किन्तु बाद के सत्रों में कहीं भी इन देशों के मुद्दों को प्रमुखता नहीं मिलती है। क्योंकि ये वे गरीब देश हैं जो हृदय से भारत के करीब हैं। जहां पर भारतवंशियों की संख्या अधिक है। जहां की संस्कृति में आज भी भारतीयता जीवित ही नहीं; बल्कि पुष्पित एवं पल्लवित

है। किन्तु ये सभी देश आर्थिक रूप से इतने समृद्ध नहीं हैं कि भारत को डॉलर दे सकें। बल्कि इनकी आशाएं भारत से सांस्कृतिक सहयोग पाने की रहती हैं। दूसरा एक बड़ा मुद्दा यह भी है कि हमारी सरकार जब भी प्रवासी दिवस पर प्रवासी भारतीयों को सम्मानित करने का निर्णय लेती है, उसमें भी जो चयन प्रक्रिया है, उसमें भारतीय भाषाओं व साहित्य का स्थान नगण्य है। जबकि विश्वविख्यात अभिमन्यु अनत जैसे 'लाल पसीना' के रचयिता मॉरीशस में हैं जिन्हें भारत सरकार को प्रवासी दिवस पर सम्मानित करना चाहिए; किन्तु करे तो भला कैसे करे, क्योंकि सम्पूर्ण मानसिकता में तो अंग्रेजी भरी है और अभिमन्यु अनत हिंदी में लिखते हैं।

अभिमन्यु अनत कोई एक नाम नहीं है। अनेकों नाम पूरे विश्व भर में बिखरे हुए हैं जो भारतीयता की अलख पूरे विश्व में प्रज्वलित किए हुए हैं; किन्तु हमारी सरकारी दृष्टि अंग्रेजियाबिंद से ग्रसित है कि उसे जो अंग्रेजी में कहा जाए, वही सुनाई और दिखाई पड़ता है। ऐसा नहीं है कि अंग्रेजी के साथ जो संस्कृति हमारे घरों में घुस रही है, उससे हमारे राजनेता व बड़े शासकीय अधिकारियों के घर-परिवार अछूते हों। सभी को अपने बेटे-बेटियों के भविष्य की, चरित्र की चिंता है। किन्तु मन में बसी हीन भावना उन्हें डैड संस्कृति से मुक्त नहीं कर पा रही है। यही हाल रहा तो दिल्ली के प्रख्यात स्कूल के मोबाइल फोन कांड कोई कांड नहीं रहेंगे; बल्कि यह एक सामान्य बात होगी, जिसे सहजता से प्रत्येक मां-बाप को स्वीकार करना होगा, क्योंकि दोष उन बच्चों का नहीं है, उस वातावरण का है जो बच्चों को उनके बड़ों व उस स्कूल ने प्रदान किया है, जहां पर स्वच्छंदता व उन्मुक्तता वहां की पहचान है, वहां का बड़प्पन है। आज यदि दो बच्चों का यह कृत्य सामने आया है तो पूरे समाज में हाहाकार मचा हुआ है, प्रत्येक अभिभावक भयभीत है; किन्तु इसकी रोकथाम के लिए कोई कर क्या रहा है ? क्या कहीं उन समाचार पत्रों व उन संचार माध्यमों के विरोध में सशक्त आवाज उठ रही है जिनके कारण ऐसे वातावरण का निर्माण हुआ है। पूरे विश्व में अनेक ऐसे प्रवासी भारतीय हैं जिनका पूरा जीवन साहित्य और समाज को समर्पित हो गया है। अनेक ऐसे हिंदी विद्वान हैं जिन्होंने घूम-घूम कर विश्वभर में भारतीय भाषा का शिक्षण किया है। उन सभी को सरकार को प्रमुखता से अपने कार्यक्रमों में जोड़ना चाहिए, ताकि ऐसे आयोजनों को सार्थकता प्रदान हो सके। यह निश्चित है कि हमारी पहचान अंग्रेजी या अंग्रेजियत नहीं है, फिर भी हम अपना मूल क्यों खोते जा रहे हैं ? एक ओर हमें अपने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की लाठी और लंगोटी पर नाज है, दूसरी ओर हम उनके द्वारा खदेड़े गए अंग्रेजों से बेहद प्रभावित हैं। महात्मा गांधी भले ही अंग्रेजों से तो जीत गए; किन्तु हमने उन्हें अंग्रेजियत से हरा दिया। महात्मा गांधी एक प्रवासी के रूप में यहां से दक्षिण अफ्रीका गए और आरंभ में अंग्रेजियत से प्रभावित रहे; किन्तु बाद में वही महात्मा गांधी भारतीय संस्कृति के पुरोधा बने। हमें भी राष्ट्रपिता होने के नाते उनसे कुछ सीखना चाहिए, अनुसरण करना चाहिए। यह कोई भाषा का विरोध नहीं; बल्कि अपनी अस्मिता, अपनी पहचान का प्रश्न है। हमें सभी भारतीय भाषाओं व बोलियों को अंतरराष्ट्रीय पहचान देनी होगी। इससे भारत भी गौरवान्वित होगा। संभवतः भारत विश्व का एकमात्र देश है जहां पर न कोई राष्ट्रभाषा है और राष्ट्रगीत को संशोधित कर नई मान्यता देने की बात चल रही है। ऐसे भारत से प्रवासी भारतीय क्या अपेक्षा करें। हमारा यह दृष्टिकोण नहीं है कि अर्थ महत्वपूर्ण नहीं है; किन्तु अर्थ ही सबकुछ नहीं है। जो भारतीय मात्र पैसा कमाने के लिए भारत से बाहर गए हैं, वे इतने चतुर हैं कि सरकार की अपनत्व भरी बातों में न आकर अपने लाभ-हानि का निर्णय अपने चार्टर्ड एकाउंटेंट के माध्यम से लेंगे। इसलिए हमारी सरकार को चाहिए कि इन सभी बातों पर ध्यान दे और प्रवासी भारतीय दिवस के आयोजन को सार्थकता प्रदान करे।

सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन विगत डेढ़ वर्ष पूर्व सूरीनाम में हुआ था। उसके बाद हिंदी को लेकर कोई छिटपुट संगोष्ठी आदि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भले हुई हो, किन्तु कोई बड़ा आयोजन नहीं हुआ है। आठवां विश्व हिंदी सम्मेलन हॉलैण्ड में होने का निर्णय लिया गया था; किन्तु उसकी सुगबुहाहट अभी तक शुरू नहीं हुई है। डॉ. मोहनकांत गौतम यूरोपीय हिन्दी समिति के अध्यक्ष मनोनीत किए गए थे और आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन का भार इन्हीं के कंधों पर है। इस समय वह भारत में हैं और प्रवासी दिवस पर वक्ता भी हैं। भारत सरकार को उनसे बात कर आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन को शीघ्र से शीघ्र करने हेतु कार्यक्रम की कोई रूपरेखा निर्धारित करनी चाहिए; क्योंकि इतना लम्बा अंतराल मात्र समय व्यर्थ करना है।

आगामी 12-14 जनवरी 2005 को साहित्य अकादमी, नई दिल्ली में अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी : प्रवासी हिंदी साहित्य और भारतीय हिंदी साहित्य के विषय पर आयोजित कर रही है। हिंदी साहित्य को समृद्ध करने के लिए यह एक सार्थक प्रयास है। हिंदी साहित्य पूरे विश्वभर में लिखा जा रहा है; किन्तु वह भारत में छपकर भी भारत नहीं पहुंच पाता अर्थात् प्रकाशकों के यहां से पुस्तकालयों तक पहुंच जाता है; किन्तु पाठकों तक नहीं पहुंच पाता, क्योंकि आम पाठक प्रवासी साहित्य से अनभिज्ञ है। इस प्रकार के आयोजनों से विश्वभर से आए हुए हिंदी विद्वानों को सन्मुख सुनने व देखने का जो सुअवसर प्राप्त होगा, वह हिंदी साहित्य को भविष्य के नए आयाम देगा। इन प्रयासों के लिए हम हिंदी साहित्य अकादमी के अध्यक्ष प्रो. गोपीचंद नारंग व हिंदी समिति के प्रमुख व 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास के रचयिता श्री गिरिराज किशोर जी को साधुवाद देते हैं और आशा करते हैं कि ऐसे कार्यक्रम भविष्य में भी होते रहेंगे।

भारत स्थित त्रिनिडाड एवं टुबैगो उच्चायोग 160वें भारतीय आगमन दिवस का अयोजन करने जा रहा है जिसके उपलक्ष्य में हमारा आगामी अंक त्रिनिडाड एवं टुबैगो विशेषांक होगा। कृपया अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान करें।

प्रवासी संसार पत्रिका इस अंक के साथ दूसरे वर्ष में प्रवेश कर रही है। अभी तक के सभी अंकों की भरपूर सराहना हुई है और यह सभी हमारे उन प्रवासी भारतीय साहित्यकार मित्रों व शुभचिंतकों के कारण ही संभव हो पाया है जिन्होंने निःस्वार्थ प्रवासी संसार के साथ जुड़कर हमें रचनात्मक सहयोग प्रदान किया है। हम उनके ऋणी हैं। साथ ही हम अपने सभी पाठकों व शुभचिंतकों के कृतज्ञ हैं जिन्होंने हमारा उत्साह बनाये रखा है।

'प्रवासी संसार' पत्रिका का पिछला अंक डॉ. गौतम जी से देखने को मिला। पत्रिका के लेखों को पढ़कर ऐसा लगा, जैसे आप अपनी पत्रिका के जरिये सभी प्रवासी भारतवंशियों को एकता के सूत्र में बांधकर एक-दूसरे की समस्याओं को, उनके सुख-दुख को समझने का प्रयत्न करा रहे हैं। हमारे समाज के कोई दो लाख सूरीनामी हिन्दुस्तानी हॉलैण्ड में रह रहे हैं और मैं चाहूंगा कि हमारे लोग भी इस पत्रिका को पढ़ें।

आपकी पत्रिका को नये वर्ष की शुभकामनायें !

–नरेन्द्र मुनेश्वर
अध्यक्ष सूरीनामी लाइडन संस्था
लाइडन, द नीदरलैण्ड्स

आपकी पत्रिका 'प्रवासी संसार' का अक्टूबर-दिसम्बर 2004 अंक मिला। बड़े ही सुरुचिपूर्ण ढंग से पत्रिका को संवारा गया हे। खिलते हुए कमल को देखकर मन गदगद हो उठा। पत्रिका इतनी सरल एवं आकर्षक है कि मिलते ही सारी की सारी पढ़ गया। आपका सम्पादकीय मन को छूता हुआ अन्दर बैठ गया है। व्यक्तिगत रूप से मुझे किसी भी भाषा से विरोध नहीं है; किन्तु उसके साथ जो अशोभनीय बातें जुड़ जाती हैं, मैं उनका विरोधी हूं। हमको अंग्रेजी से नहीं, अंग्रेजियत से सतर्क रहना है। हिन्दी भाषा का तिरस्कार असह्य होना चाहिये, हर भारतीय को। यह हमारी अस्मिता का प्रश्न है। उषा राजे का लेख शोधपूर्ण एवं संतुलित लगा। उनको मेरी बधाई है। माधवी गुप्ता की कविताएं भी मानवीय संवेदनाओं को उजागर करती हुई हमसे कुछ प्रश्न भी करती हैं। डॉ. परमानंद पांचाल का लेख खड़ी बोली की व्यापकता को दर्शाता है, अच्छा लगा। ऐसे महत्वपूर्ण यज्ञ को प्रारम्भ करने के लिये मेरी शुभकामनाएं एवं बधाई दोनों स्वीकार करें।

–डॉ. कृष्ण कुमार
संस्थापक एवं अध्यक्ष
गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय
यू.के.

'प्रवासी संसार' के लिए आभार ! पत्रिका आप एक अच्छे उद्देश्य से निकाल रहे हैं। इस बहाने हम प्रवासी समाज, उनकी संस्कृति, साहित्य, मुश्किलों को समझ पायेंगे।

–देवेन्द्र चौबे
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

प्रवासी संसार का अक्टूबर-दिसम्बर 2004 अंक आद्यान्त पढ़ा। आज विज्ञापन के युग में भी आपकी पत्रिका विज्ञापन विहीन है, यह हिन्दी जगत के लिए हर्ष का विषय है। रचनाओं का स्तर ऊंचा है, बधाई स्वीकारें। नेता वन्दना, जिंदगी एक सफर है सुहाना, सरकारी दामाद प्रभावित करते हैं। साहित्य की बगिया में काव्य की किलकारियां अच्छी लगीं।

सम्पादकीय में जो विदेशों में हिंदी प्रचार-प्रसार की बात पढ़ने को मिली, उससे प्रत्येक हिंदीसेवी का सिर गर्व से ऊंचा तो होना ही चाहिए, साथ ही भारत देश में हिंदी को जन-जन तक पहुंचाने के लिये हिंदी सेवियों को उल्लेखनीय कार्य भी करने की आवश्यकता है। मुझे आशा है कि 'प्रवासी संसार' इस लक्ष्य की ओर सफलता के साथ अग्रसर है। सशक्त पत्रिका के प्रकाशन के लिए प्रवासी संसार परिवार का वन्दन करता हूं।

अपनी भाषा, संस्कृति का, हो जग में विस्तार।
फलीभूत हो हिंदी का, यह प्रवासी संसार।।

–मनोहर लाल 'रत्नम्'
सचिव : हिन्दी साहित्य समाज
नई दिल्ली

'यथो नामः तथो गुण' को चरितार्थ करती 'प्रवासी संसार' के सभी अंक निरंतन पढ़ने को मिलते रहते हैं। सुरुचिपूर्ण आकर्षक आवरण तथा विविधपूर्ण स्तरीय सामग्री के कारण पत्रिका साहित्य जगत में अपना स्थान तेजी से बना रही है। पत्रिका के माध्यम से विश्वभर के हिंदी लेखक एक मंच पर आ रहे हैं, साथ ही प्रवासी संसार का संपादकीय हिंदी के वैश्वीकरण का पूर्ण विश्लेषण कर अपने रचनात्मक संपादन का विशेष परिचय देता है। आपकी संपादकीय प्रतिभा को साधुवाद ! पत्रिका के सभी अंक किसी न किसी मायने में संग्रहणीय हैं।

–के.बी.एल. सक्सेना
यू. के.

'प्रवासी संसार' का अंक पठनीय और संग्रहणीय लगा। उत्कृष्ट सामग्री का चयन, सुदृढ़ सम्पादन और त्रुटिहीन प्रकाशन इस पत्रिका की विशेषता है। इस अंक में लंदन की हिंदी विदुषी श्रीमती उषा राजे सक्सेना जी का लेख ब्रिटेन में हिंदी का इतिहास श्रंखला के अंतर्गत 'हिंदी भाषा और विकास' शोधपरक और अद्यतन ज्ञान से परिपूर्ण उत्कृष्ट लेख रहा। लेखिका ने बड़े ही परिश्रम के साथ गवेषणात्मक शैली में लेख की प्रस्तुति की है। साधुवाद दें !

डॉ. रत्नाकर पाण्डेय जी का चिंतन 'जिंदगी एक सफर है सुहाना' मननीय और प्रेरणास्पद है। मॉरीशस के डॉ. बीरसेन जागासिंह का लेख सूचनाप्रद के साथ-साथ इतिहासपरक है। डॉ. पांचाल जी का लेख भी पठनीय है। सुखवीर सिंह तेवतिया का लेख 'कृष्ण काव्य में वानस्पतिक सौंदर्य' विषय की दृष्टि से नवीनतम है। अभिमन्यु अनत की कहानी 'निर्णय' भावपूर्ण लगी। डॉ. रवि शर्मा का व्यंग्य 'सरकारी दामाद' अंदर तक गुदगुदा गया। शेष सामग्री भी स्तरीय एवं पठनीय है।

–डॉ. हरिसिंह पाल
आकाशवाणी, नई दिल्ली

पिछले सप्ताह 'प्रवासी संसार' का नया अंक अक्टूबर-दिसम्बर 2004 पाया। देखकर मन मुग्ध हो गया। यह आपकी साधना और पुरुषार्थ का परिणाम है। मेरी बधाइयां और साधुवाद स्वीकारें !

–राधाकान्त भारती
अनुसंधानकर्त्ता और पत्रकार

ijnlok u tb;k l;k lkou e---

F डॉ. रत्नाकर पाण्डेय

''परदेसवा न जइयो सैयां सावन में, एक लाल पलंग पचरंग तकिया, सुधि आवै हो बलम तोरी आधी रतिया, परदेसवा न जइयो सैयां सावन में...'' और लम्बी लहरदार दर्द से भरी आगे की पंक्तियां याद नहीं आ रही हैं।

परदेस जाना और बात है, पर विदेश में जाना, वह भी आज से 150 वर्ष पहले और पहले बंदी बनकर पानी के जहाज से ऐसे उजाड़खंड, पहाड़ी, जंगली, सांय-सांय करती समुद्री धरती पर जहां अनादि मानव रहते हों, पेट की ज्वाला में धधकते अरमानों का पिटारा लिए, रामायण और हनुमान चालीसा की पुस्तकें लिए पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार के पश्चिमी इलाके और देश के छिटपुट हिस्सों के हजारों लोग गिरमिटिया बनकर गए। तूफानी सागर की लहरें, पहाड़ी जमीन, चाबुक मार-मार कर अंग्रेज काम लेते, पीठ पर कोड़े बरसाये जाते, उजाड़खंड धरती को शस्य-श्यामला उर्वर धरती में परिवर्तित करने में प्राणों की बाजी लगाकर बंदी की चेतना जब जागृत होती तो बैठकों में 'जय हनुमान ज्ञान गुन सागर, जै कपीस तिहुं लोक उजागर' या 'तब देखी मुद्रिका मनोहर, राम नाम अंकित अति सुंदर' सुंदरकांड, रामायण का ढोलक, मजीरा की थाप पर हनुमान चालीसा और रामायण की चौपाइयों और दोहों में जीवन दर्शन सामूहिक रूप से सस्वर वाणी से उच्चारित होते थे, उन्हीं से मॉरीशस, त्रिनिडाड, गुयाना, सूरीनाम, फिजी, दक्षिण अफ्रीका आदि में अभिनव भारत का जन्म हुआ। भारतीय संस्कृति की समरसता का समवेत स्वर एकोऽहं बहुस्यामि या पर उपकार कुशल बहुतेरे या परित्राणाय साधुनां या जब जब होहि धरम कै हानी, बाढ़ें असुर महाभिमानी, तब तब प्रभु धरि मनुज सरीरा, हरिहिं विषय भव सज्जन पीरा का आत्मबोध करने वाले हमारे पूर्वजों ने जो संपन्न वंश परंपरा सृजित की उस पराधीनता में स्वाधीनता का शंखनाद करने वाले मुट्ठी भर बंदियों की संतानों ने संवार-शृंगार कर जिस पहाड़ी धरती को उर्वरा ईख की मिठास से उत्पन्न रसमयता से निरंतर पैदावार की अभिवृद्धि की, वे ही भाई-बहन हमारे प्रवासी भारतीय के रूप में आज सारी दुनिया के सुदूर इलाकों में अनेक देशों में बहुमत में आकर भारतीयों से बढ़कर भारत की संस्कृति, तीज, त्योहार, परंपरा, पूजापाठ, व्रत, माहात्म्य, खान-पान, रस्म-रिवाज और विस्थापित भारतीय की भूमिका में नए देशों में प्राणों की रसधारा का संचार कर रहे हैं। उनकी आत्मा गंगा, यमुना, काशीविश्वनाथ, भैरव बाबा, बजरंग बली, दुर्गा मइया, होली, दशहरा, दीवाली, रक्षा बंधन और सर्वत्र भारती की जयनाद से आत्म साक्षात्कार करते हुए पूरी मानवता से जुड़ी है। ऐसी मजबूती से भारतीय संस्कृति को धरोहर के रूप में हिडेन ट्रेजर की तरह वे आत्मसात किए हुए हैं, जैसा हम भारतीय भी नहीं कर सकते हैं।

प्रवासी भारतीय सर्वत्र हैं। दुनिया के किसी भी देश में चले जाइए, वहां सूरज-चांद की तरह भारत के लोग व्यवसायी के रूप में, मजदूर के रूप में, इंजीनियर, टेक्नोक्रेट, डॉक्टर, अध्यापक, कलाकार, साहित्यकार, शिल्पी, पेंटर, टैक्सी ड्राइवर, बड़े-बड़े धनाढ्य, रेस्ट्रां एवं प्राविजनल स्टोर के मालिक, न जाने किस-किस रूप में मिल जाएंगे।

भारत ने स्वतंत्रता के पचास वर्षों के बाद प्रवासी भारतीयों पर ध्यान देना शुरू किया है। प्रतिवर्ष प्रवासी भारतीय सम्मेलन देश में हो रहा है। सरकार प्रवासियों से पूंजीनिवेश का आग्रह करती है, वे निवेश भी करते हैं। भारत भी बहुत से देशों में अपना अर्थ निवेश करता है। सांस्कृतिक शिष्टमंडल का आदान-प्रदान होता है, गुडविल मिशन आते-जाते हैं, आई.सी.सी.आर. के विदेशों में कार्यक्रम आयोजित होते हैं। हमारे विदेशी दूतावास भी इस क्षेत्र में हाथ-पांव मारते हैं। लोग प्रवासी सम्मेलनों में आकर धन्य-धन्य हो जाते हैं। दो-चार दिन का मेला लगता है, भाषण होते हैं, सम्मान समारोह होता है, अपने और कई देशों के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्री और शिष्टमंडल शिरकत करते हैं और फिर अगले वर्ष मिलने की तमन्ना लिए विसर्जित हो जाते हैं।

प्रवासी भारतीय मंत्रालय का सरकार ने सृजन किया है; पर रोज अखबारों में पढ़ने को मिलता है कि न विदेश मंत्रालय, न कॉमर्स मंत्रालय, न मानव संसाधन विकास मंत्रालय, न और कोई मंत्रालय इस नए सृजित मंत्रालय को अपने विभाग से कुछ देना चाहता है, न उसके वजूद को पूर्ण स्वीकृति मिल पा रही है। केवल मिनिस्टर बनाकर इनडिविजुअल को एब्जॉर्ब कर लेने से क्या फायदा ?

प्रवासी मंत्रालय इस वर्ष मुंबई में अपना प्रवासी समारोह कर रहा है। ठीक है ! लोग आएंगे-जाएंगे, बड़े-बड़े प्रस्ताव भाषण होंगे, सांस्कृतिक संध्या, सम्मान समारोह और बहुत कुछ होगा। जहां कुछ भी नहीं था, वहां कुछ न कुछ हो रहा है, चाहे औपचारिकता के रूप में ही क्यों न हो ?

जरूरत इस बात की है कि भारत में प्रवासी भारतीयों के लिए एक विस्तृत संग्रहालय बने, जिसमें दुनिया के विभिन्न देशों के प्रवासियों के ग्रंथ, कलाकृतियां, वैज्ञानिक उपलब्धियां, साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएं, पेंटिंग्स उपलब्ध हों, प्रवासियों के नाम, पते और कार्यकलापों का सचित्र विवरण हो, प्रवासी भारतीयों ने जो दुनिया के विभिन्न देशों में अपनी श्रम शक्ति, ऊर्जा, विवेक भावना से अनूभूतियों का जो संसार बसाया है, उसकी रंगबिरंगी ललक भरी झलक का प्रतिबिंब सृजित

हो, भारतीय विश्वविद्यालयों में विभिन्न देशों के प्रवासियों की प्रतिष्ठा स्थापना हेतु शोधपीठ स्थापित हो, एक साप्ताहिक पत्रिका 'रोजगार समाचार' की तरह भारत सरकार से प्रकाशित हो, जिसमें प्रवासी संसार की सृजनात्मक उपलब्धियां, साहित्य, संस्कृति पत्रकारिता के माध्यम से प्रकाशित हो और सर्वत्र दुनिया में इसका वितरण हो।

हमारे दूतावास राष्ट्रभाषा हिंदी और भारतीय भाषाओं में काम करें। उनके कल्चर सेंटर्स में हलो, हाय की औपचारिकता न हो, बल्कि लोकगीत, नृत्य, शास्त्रीय संगीत, लोक कलाकार, साहित्यकार, कवि और राष्ट्रीयख्याति के व्याख्यानदाता जाकर भारी-भरकम भीड़ भरे समारोहों में अपनी कला की अभिव्यक्ति का आयोजन करें। प्रवासी संसार में जो विविध देशों का साहित्य हिंदी और भारतीय भाषाओं में बहुतायात से छपे, उसे पढ़ने-पढ़ाने की व्यवस्था की जाए।

'वसुधैव-कुटुम्बकम्' की परिकल्पना प्रवासी भारतीय के पीछे है। प्रवासी भारतीय जब अपना देश छोड़कर विदेशों में जाकर बसता है तो अपनी माटी, अपना जल, अपनी वायु, अपना क्षितिज, अपनी अग्नि, अपने आकाश से सृजित अपने व्यक्तित्व और कृतित्व को दूसरे वातावरण में ढालने के लिए जो त्याग और तपस्या करता है, वह अतुल्य और अनुपम है। उसके दिल के अरमां आंसुओं में बहने लगते हैं, वह वफ ा करके भी तनहा रह जाता है। उसकी तनहाई के पीछे पूरा भारत खड़ा है। यह बोध कराने का काम प्रवासी भारतीयों के लिए हमें करना पड़ेगा, तभी उसकी सार्थकता है, नहीं तो स्वतंत्रता के बाद भी जैसे हम व्यवस्था, प्रशासन, भाषा, शिक्षा और अन्य क्षेत्रों में पराधीन हैं, उसी तरह प्रवासी मंत्रालय की भी कोई सार्थकता नहीं होगी।

कुछ बिंदुओं पर मैंने रोशनी फेंकी है। थोड़ा कहना बहुत समझना की शैली विलुप्त होती जा रही है। मुंबई के प्रवासी भारतीय सम्मेलन में 'प्रवासी संसार' के सर्जक नौजवान राकेश पाण्डेय की उपस्थिति मेरा वैचारिक प्रतिनिधित्व करेगी। और जो कुछ मैंने लिखा है, वह बेकार की बात है या उसमें कुछ दम है या नहीं, इसे पढ़ने वाले जानें। ब्रह्म मुहूर्त्त में 2005 के आगमन की प्रभात बेला पर अपने प्रवासी भारतीयों से यही कहना है कि हम तुम्हारे खून हैं, तुमने खून-पसीना एक करके संसार में भारत और भारतीयता का जो परचम लहराया है, वह हमेशा 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊंचा रहे हमारा' का गान गाते हुए 'शान न इसकी जाने पावे, चाहे जान भले ही जावे' के संकल्प के साथ दुनिया में सारी मानवता की जय करने में लगे रहें। आप हमारे रक्त कण हैं

''पढ़ो रक्त की भाषा को,
विश्वास करो इस लिपि का,
यह कभी न भरमाएगी।''

सारी दुनिया के मनुष्यों से भारतीय प्रवासी यही कहेंगे

"हवा के दोज [1] पर लहराता परचम[2] हम भी देखेंगे।
तुम्हें भी देखना होगा, तमाशा हम भी देखेंगे।।

l

1. कंधा, 2. झंडा

l jLorh onuk

F प्रो. हरिशंकर आदेश, त्रिनिडाड एवं टुबैगो

मुझको नवल उत्थान दो,
मां सरस्वती ! वरदान दो।

मां शारदा ! हंसासिनी !
वागीश ! वीणा-वादिनी !
मुझको अगम स्वर-ज्ञान दो !
मां सरस्वती ! वरदान दो।

माया न मुझको ठग सके,
मन फंस न मोहों में सके,
कर दूर अब अज्ञान दो।
मां सरस्वती ! वरदान दो।

निष्काम हो मन-साधना
मेरी सफल हो साधना,
नव गति, नयी लय, तान दो।
मां सरस्वती ! वरदान दो।

हो सत्य जीवन-सारथी
तेरी करूं नित आरती,
समृद्धि, सुख, सम्मान दो।
मां सरस्वती ! वरदान दो।

मन, बुद्धि, हृदय पवित्र हो,
मेरा महान् चरित्र हो,
विद्या, विनय, बल, दान दो।
मां सरस्वती ! वरदान दो।

यह विश्व ही परिवार हो,
सबके लिए सम प्यार हो,
'आदेश' लक्ष्य महान् दो।
मां सरस्वती ! वरदान दो।

l

iokl h fnol] cgr dN vudgk jg x;k---

F प्रो. मोहन कां. गौतम, नीदरलैण्ड

इस वर्ष 7 नवम्बर, 2004 को सायंकाल को डॉ॰ मनमोहन सिंह, प्रधानमंत्री, भारत गणराज्य के हॉलैण्ड आगमन पर, भारतीय दूतावास ने ''हाऊस वान डाउन'' में भारतवाशियों (एन॰ आर॰ आई और पी॰ आई॰ ओ॰) को प्रधानमंत्री से मिलने के लिये एक भोज पर आमंत्रित किया। डॉ॰ मनमोहन सिंह ने अपने वाचन में भारतीय मूल के भारतवंशियों की सराहना की। भारत के सम्बंध और धरोहर को सूरीनामी भारतवंशियों ने बड़ी आत्मीयता से सुरक्षित रखा है और आज भी जीवित हिन्दी इनके परिवेश में मिलेगी। भारत उनका घर है और आने वाले तृतीय प्रवासी भारतीय दिवस की चर्चा में श्री नटवर सिंह, विदेश मंत्री ने कहा कि आप सब घरवालों से मिलने के लिये मुम्बई आयें, जो इस बार 7 जनवरी से 9 जनवरी तक होगा। मुझे एकाएक 2001 वर्ष याद आ गया जिस वर्ष डॉ॰ एल॰ एम॰ सिंघवी, जो भारतीय डियास्पोरा कमीशन के अध्यक्ष थे और भारतवंशियों से मिलने हॉलैण्ड भी आये थे, उन्होंने सूरीनामी भारतवंशियों की एक गोष्ठी में ऐसे ही शब्द कहे थे। तब उन्होंने अपने दूसरे सदस्यों और भारतीय राजदूत की उपस्थिति में कहा था कि कोई 50 वर्ष बाद भारत सरकार ने यह निश्चय लिया है कि प्रथम भारतीय दिवस समारोह के माध्यम से भारतवंशियों और भारत के बीच उस सेतु का प्रयोग हो जिसका उपयोग सूरीनाम जाने के लिये कोई 125 वर्ष पूर्व आपके दादा-दादी ने किया था। उन्होंने सभी भारतवासियों को भारत आने के लिये आमंत्रित किया था। इस कमीशन ने एक रिपोर्ट भी बनाई थी जो 2001 में प्रकाशित हुई थी। हालांकि इसमें काफी कमी थी और भारतवाशियों के मुद्दे और उनकी समस्याओं का खुलासा विवरण नहीं हो पाया। 2002 के आरंभ होते ही पश्चिमी यूरोप के भारतीय दूतावास के सांस्कृतिक सचिव के टेलीफोन बजने लगे। पहले तो कमीशन की रिपोर्ट के लिये सूचना और विस्तृत सामग्री मांगी जाने लगी। फिर प्रथम प्रवासी भारतीय दिवस समारोह में भाग लेने के लिये कहा गया कि भारतवंशी वहां बड़ी तादाद में जायें ताकि समारोह भारतवंशियों और भारतीयों के बीच मिलन बन सके। इसके प्रचार और प्रसार के लिये विदेश मंत्रालय के सचिव, 'फिकी' (अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को बनाने और विकसित करने की व्यापारिक संस्था) के बड़े ऑफिसर आदि का आना प्रारंभ हो गया। फिकी इस समारोह की व्यवस्था कर रही थी। बताया गया कि यह समारोह 9 से 11 जनवरी 2003 तक दिल्ली में होगा। 9 जनवरी का महत्व यह था कि इसी दिन महात्मा गांधी 20 वर्ष दक्षिण अफ्रीका में रहने के बाद भारत आये थे। तो इस तिथि को एक तरह से इसलिये रखा गया कि यही दिन प्रवासियों के भारत लौटने और घरवालों से मिलने का प्रतीक दिन माना जाये। तो क्या महात्मा गांधी फिर पहले 'गिरमिटिया' थे जो भारत से बाहर गये थे और लौटकर भारत आये थे। इसी संन्दर्भ में हिन्दी लेखक श्री गिरिराज किशोर की सर्व चर्चित पुस्तक ''पहला गिरमिटया'' की याद आई। जो महात्मा गांधी की जीवनी है। यह कहना कि गांधी पहले गिरमिटिया थे, बात समझ में नहीं आई। हां, गांधी राष्ट्रपिता थे, इसको तो सभी मानते हैं।

ऐतिहासिक तथ्यों पर नजर दौड़ाई जाये तो विदित होता है कि सबसे पहले पोर्तगीजों ने भारतियों को दास बनाकर पुर्तगाल भेजा था और बाद में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने भारतीय उत्प्रवासियों (ऐमीग्रेन्ट्स) को काम कराने के लिये अपने-अपने उपनिवेशों में बुलाया था। भारत के पश्चिम-दक्षिण में मॉरीशस और रियूनियन टापुओं पर फ्रांस का शासन था। इन उपनिवेशों की आर्थिक उन्नति के लिये श्रमिकों की आवश्यकता हुई। पहले तो अफ्रीका से अफ्रीका उत्प्रवासी मंगाये गये पर जब उनसे काम नहीं चला तो फिर मेहनती भारतीय कृषक-श्रमिकों को बुलाया गया। यह बात 1830 से पहले हुई थी। दास प्रथा के उन्मूलन के बाद अंग्रेज उपनिवेशों में भारतीय उत्प्रवासियों को मॉरीशस और गयाना भेजा गया। फिर सिलसिला जम गया। भारतीय उत्प्रवासी अब 5 वर्ष के ठेके के लिये फ्रांसीसी, अंग्रेज और डच उपनिवेशों में भेजे जाने लगे। सन् 1934 से 1916 तक कोई 1.2 मिलियन भारतीय उत्प्रवासी भेजे गये जिसमें से 30-40 प्रतिशत भारत लौट आये। मेरे विचार में वही पहले गिरमिटियों की पहली कतार थी जो भारत लौटी होगी। 20वीं सदी में इन भारतवंशियों का नाम किसी ने भी नहीं लिया, न तो अंग्रेजों ने, न फ्रांसीसियों ने और न भारत ने। और फिर एकाएक भारत की स्वतंत्रता के 55 वर्ष बाद जब प्रवासी भारतीय दिवस समारोह का नाम सामने आया तो काफी आश्चर्यजनक लगा। और जब एक लम्बी अवधि के बाद भारत ने प्रवासी भारतीय दिवस समारोह करने का निश्चय लिया, तब भारतवंशियों में आत्मीयता की लहरों ने उन्हें आजा-आजियों (दादा-दादियों) के भारत लौटकर जाने के स्वप्नों को साकार कर दिया। दनहाग स्थिति भारतीय दूतावास के सांस्कृतिक सचिव श्री पुरुषोत्तम दास से इस समारोह की पूछताछ की जाने लगी। सूचियां बनने लगीं। कौन जाना चाहेगा। तभी भारतीय सूचना पत्रिकायें भारतीय दूतावास से बंटने लगीं। 200 डालर रजिस्ट्रेशन था। इस पर आपत्तियां हुई। भारत से कोई भी आर्थिक सहायता नहीं थी। दूर देशों में बसे भारतवंशियों के लिये यह समारोह स्वप्न ही बना रहा। कहां से कोई 2 लाख रुपये का प्रबन्ध करे। भारतवंशियों में पी॰ आई॰ ओ॰ यानी ''पीपुल्स ऑफ इण्डियन ऑरिजन'' (उत्प्रवासी भारतीयों की पीढ़ियां) और एन॰ आर॰ आई॰ यानी ''नन रेजीडेंट इन्डियन्स (भारत में न रहने वाले भारतीय जो 1950 के बाद शिक्षा और व्यापार के लिये

बाहर गये थे।) दोनों वर्गों में भारत जाने की ललक तो थी पर आर्थिक स्थिति को देखकर केवल कुछ ही लोग जा पाये। हॉलैण्ड में दोनों ही वर्गों के भारतवंशी रहते हैं और उनकी सम्मिलित जनसंख्या कोई 2 लाख से ऊपर है। भारत से सम्बंधित भारतीय तो केवल 15,000 हैं और शेष अधिकृत सूरीनाम से हैं जहां कोई 2 वर्ष पूर्व 7वां विश्व हिन्दी सम्मेलन पारामारिबो में हुआ था। सन् 1873 में पहला जहाज ''लल्लारूख'' उत्प्रवासी भारतीयों को लेकर कलकत्ता के गार्डन रीच बंदरगाह से सूरीनाम गया था। जब सूरीनाम स्वतंत्र होने को हुआ तो 20वीं सदी के सातवें दशक में एक बहुत बड़ी संख्या में सूरीनामी भारतवंशी आप्रवास के लिये नीदरलैण्ड्स आ गये। भारतीयों का जब इंग्लैण्ड में आप्रवास बन्द हो गया तो वे भी हॉलैण्ड आने लगे। हालांकि दोनों वर्ग भारतवंशी हैं फिर भी उनमें अन्तर है। सूरीनामी भारतवंशी उत्तर भारत (उत्तर प्रदेश, बिहार, नेपाल, बंगाल आदि) से आये थे और वे हिन्दी, भोजपुरी अवधी का मिश्रण जिसे सरनामी भी कहते हैं, तीज-त्यौहार और परम्परा से जुड़े हैं। भारत को अपने आजा-आजी का देश मानते हैं। भारतीय भारतवंशी आधुनिकीकरण के चोंगे में फंसकर अंग्रेजशुदा बन गये हैं। भारतीय त्यौहार, रीति-रिवाज और हिन्दी भाषा उनके लिये अनुपयोगी-सी लगती है और इसी कारण दोनों वर्ग एक-दूसरे से दूर होते जा रहे हैं।

जब दिसम्बर आ गया तो दोनों वर्गों ने अपनी-अपनी जाने वालों की सूचियां बना डालीं। सूरीनामी भारतवंशी चाहते थे कि कम से कम उनका अगुआ भारत में जाकर इस समारोह में भारत सरकार को धन्यवाद दे सके। श्री राजेन्द्र नाथ अवस्थी जो सूरीनामी भारतवंशियों के नेता हैं, का नाम सामने आया। भारतीय दूतावास से निवेदन किया गया कि उन्हें बोलने का अवसर दिया जाये। मैंने प्रयास नहीं किया और फिर मुझे सूरीनामी भारतवंशियों की संस्कृति पर बोलने का निमंत्रण मिला। श्री रूप चन्द्र जो ओ३म् रेडियो-टी॰वी॰ के डायरेक्टर हैं, को भी मेरे प्रयत्न पर ऐथनिक मीडिया वाले सत्र में बोलने के लिये निमंत्रण मिला। जनवरी में कोई 100 भारतवंशी समारोह में भाग लेने के लिये भारत जा पहुंचे। जिसमें 70% सूरीनामी भारतवंशी थे। सभी ने अपनी जेबों से खर्चा किया। हवाई जहाज का, होटल का और प्रवासी भारतीय दिवस समारोह में भाग लेने का। 7 जनवरी को उन्हें उनके नाम के बैज्स (नाम के कार्ड) मिले और बताया गया कि सिक्यूरिटी (सुरक्षा) कड़ी होने के कारण कोई भी व्यक्ति कैमरा, मोबाइल, टेलीफोन आदि मुख्य पांडाल में नहीं ले जा सकेगा। बहुत से भारतवंशी इसी विचार से गये थे कि वे भारत में आकर इस मेले के चित्र ले सकेंगे और लौटकर अपने घरवालों को, मित्रों को दिखाकर आजा-आजी के भारत जाने के मिथक को साकार रूप दे सकेंगे। 9 तारीख को सभी भाग लेने वाले कारों से, बसों से, यानी किसी न किसी माध्यम से प्रगति मैदान जा पहुंचे। मुख्य पांडाल में घुसने के लिये दो दरवाजे बनाये थे, एक तो विशेष अतिथियों के लिये था और दूसरा अन्य के लिये, किन्तु दोनों पर कोई 50 मीटर की कतार लगी थी। मैटल डिटेक्टर लगे थे। तालाशी भी ली जा रही थी। लेकिन कोई ऐसा प्रबन्ध नहीं था कि आये हुए प्रतिनिधि एक स्थान पर बैठ सकें। किसी न किसी तरह भाग लेने वाले कहीं न कहीं स्थान पाकर बैठ गये। स्टेज पर प्रधानमंत्री अटल जी और उनके साथ काफी लोग जब बैठ गये तो दीपदान के बाद पं॰ रविशंकर और उस्ताद बिसमिल्ला खान के सितार और शहनाई पर युगल जोड़ी छिड़ी। लोग मुग्ध हो गये। अनुष्ठान आरम्भ हो चुका था। मीडिया के लोग एक तरफ जमे चित्रों की खिंचाई में व्यस्त थे तो दूसरी ओर समाचार पत्रों के संवाददाता।

भारत के प्रधानमंत्री अटल जी उठे और कहने लगे ''आज इस अनुष्ठान में 60 देशों से भारतवंशी अपने घर एक लम्बी अवधि के बाद लौटे हैं। हम सबकी एक ही आस्मिता है और वह है भारतीयता। भारत आपका देश है और आज के भारत के उद्योगों में नये अवसर हैं, आज हम भारतीय परिवार के वैश्वीकरण से जुड़े हैं। 88 वर्ष पूर्व आज के ही दिन गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से आये थे। उसी दिन को आज हमने प्रवासी भारतीय दिवस माना है। भारतवंशी का सबसे बड़ा गुण है कि जहां पर किसी देश में जब कोई भारतीय होता है तो उसके साथ उसका भारत होता है; क्योंकि भारत विभिन्नता की एकता का देश है, उसकी अस्मिता कितनी भी विभिन्न क्यों न हो, पर उसकी अस्मिता सदैव भारतीय बनी रहती है। फिर एकाएक श्री अटल जी ने अपनी साहित्यिक भाषा का सहारा लिया और भारतवंशियों को सम्बोधित करके कहने लगे

विदेश में देश की शान बढ़ाई भारत की पहचान।
सदा हमारे दिल में रहते कैसे कहें मेहमान।।

दूसरी भाषा बोलने से, दूसरा रहन-सहन रखने से, दूसरा धर्म मानने से और दूसरे देशों में रहने से हमारा हृदय फिर भी हिन्दुस्तानी और यही हमारी अस्मिता की पहचान है।

तालियों की गड़गड़ाहट से पांडाल गूंज उठा। इस समारोह के मुख्य अतिथि श्री अनिरुद्ध जगन्नाथ मॉरीशस के प्रधानमंत्री थे। उनके शब्दों में साफ था कि भारत की सन्तान चाहे जहां भी हो, उसका भारत से लगाव आत्मीयता का है और आज भारत में आकर हम सबने अपने घर को पहचान लिया है, मिलकर रहने ही में हमारी अपार शक्ति है। अंत में इस प्रवासी भारतीय दिवस समारोह के कर्ण डॉ॰ एल॰ एम॰ सिंघवी ने अपने विचार प्रकट किये। ''भारतीय डियास्पोरा की राष्ट्रीय भावना का स्रोत भारत और भारत की सभ्यता है। भारत डियास्पोरा ही भारत की शक्ति है, यही वैश्वीकरण का भारत है या यूं कहें कि आज भारत का वैश्वीकरण है। इस उद्घाटन के बाद दो दिन तक विचार-विमर्श सत्रों में हुए।

भारतवंशियों को भारत के 84 व्यंजनों के रसों का परिचय कराने के लिये भारत के बहुत से राज्यों ने अपने खाने के टैन्ट लगाये। सूरीनाम के भारतवंशी कुछ असंतुष्ट अवश्य हुए, जब उन्होंने देखा कि उत्तर प्रदेश और बिहार राज्य के कोई अतिथि सत्कार के टैन्ट नहीं थे। देर शाम को सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गए जिनमें बॉलीवुड के नायक-नायिकाओं ने लोगों को अपने नृत्य और संगीत से मोहित कर लिया। इनमें थे शाहरूख खान और कुमारी ऐश्वर्या जो कभी मिस वर्ल्ड भी रह चुकी थीं। एक प्रकार से भारतवंशी इन कार्यक्रमों से समारोह की त्रुटियों को भूल गये, लेकिन उन भारतीयों के बारे में भी पता पड़ा, जिन्होंने भारतीय अस्मिता की सुरक्षा की है और अपने देश में काफी

ऊंचा नाम कमाया है। कोई 10 लोगों को सम्मान भी मिला। प्रगति मैदान को एक प्रकार से भारवंशियों का विश्व ग्राम बना दिया गया था। वहां प्रदर्शनी भी थी और स्थान-स्थान पर भारतवंशी महापुरुषों के बहुत बड़े चित्र भी स्थापित किये गये थे, जैसे डॉ॰ छेदी जगन, गयाना के, श्री जगन्नाथ लछमन, सूरीनाम के और श्री शिव सागर राम गुलाम, मॉरीशस के। हां, सत्र अवश्य हुए पर बोलने वालों को 5 मिनट से ज्यादा बोलने का अवसर नहीं मिला और फिर कोई प्रश्न भी पूछने का लोगों को समय नहीं मिला। मूल भारतवंशियों को ऐसा भास हुआ जैसे उन्हें भारत से सम्बन्धित भारतीयों (एन॰ आर॰ आई॰) की तुलना में कम महत्व दिया गया। ब्रिटिश पौण्डस् और डालर देशों के लोगों पर ही यह तमाशा हुआ था। क्योंकि मूल भारतवंशी कोई 20 मिलियन हैं तो उन्हें नकारा तो नहीं जा सकता था, पर उन पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। भारत के समाचार पत्रों ने, दूरदर्शन ने, रेडियो ने और मीडिया के सभी माध्यमों ने एन॰ आर॰ आई॰ पर विशेष ध्यान दिया, फिर भी भारतीयता की आत्मीयता की भावना से रंगकर मूल भारतवंशी भारत के धर्म तीर्थों की खोज में लग गये। कुछ लोगों ने गांवों में जाकर अपने आजा-आजी के रिश्तों की तलाश की। और जब लौटे तो एकाएक उनकी समारोह की स्मृतियों पर कुहासा छा गया। वो यह नहीं समझ पाये कि इतनी राशि खर्च करने के बाद उन्हें क्या मिला ? सम्भवतः संतोष नहीं मिला, शायद इसलिये कि उनकी स्मृति में भारत की छवि एक दूसरे प्रकार की थी, जहां भारतीयता की संज्ञा उस परिवार से थी जहां 'अपनापन' उनकी कसौटी थी।

फिर प्रथम प्रवासी भारतीय दिवस की भांति दूसरे प्रवासी भारतीय दिवस की घोषणा हुई। फिर से द हेग के भारतीय दूतावास ने टेलीफोनों द्वारा समारोह की सूचना दी, लेकिन इस बार भाग लेने वाले भारतवंशियों की संख्या काफी कम रही। फिर भी हॉलैण्ड के सूरीनामी भारतवंशी एक बड़ी तादाद में दिल्ली गये। इस बार ''द इण्डियन डियास्पोरा इन द नीदलैण्ड्स'' (नीदरलैण्ड्स में भारतीय हिन्दुस्तानी डियास्पोरा) छापी जिसका निःशुल्क वितरण दिल्ली में हुआ, ताकि अन्य भारतवंशी और भारतीय हॉलैण्ड के भारतवंशियों के सूरीनामी भारतीय डियास्पोरा के बारे में कुछ जानें। सूरीनाम से लेकर नीदलैण्ड्स के द्वितीय आप्रवास का वर्णन किया गया और कैसे इन हिन्दुस्तानियों ने डच समाज के साथ एकीकरण (इन्टीग्रेशन) कर लिया है। इस पुस्तिका के प्रकाशन का दायित्व, हॉलैण्ड की सनातन, आर्य समाज, विश्व हिन्दू समाज, ओ३म् टी॰ वी॰-रेडियो और हॉलैण्ड के मुस्लिम टी॰ वी॰ रेडियो ने मिलकर निभाया था।

दूसरे प्रवासी भारतीय दिवस समारोह 9-11 जनवरी, 2004 का प्रबन्ध फिर से फिकी ने किया और इस बार पूरा विश्व-ग्राम इंदिरा गांधी स्टेडियम के पास बनाया गया। द्वार पर ही नगाड़े और शहनाई की ध्वनि पर बाहर से आये प्रतिनिधि भारतवंशियों का स्वागत हुआ। पच्चीसों प्रकार के व्यंजन बने पर इस बार भी उत्तर प्रदेश और बिहार के अतिथि सत्कार के टैन्ट नहीं थे। पिछली बार की भांति इस बार भी 5 विशेष सत्रों (प्लेनरी) का आयोजन हुआ जिनका सभापति डॉ॰ वासुदेव पांडे (त्रिनिडाड), श्री ज्योतिन्द्र सिंधिया (भारत), डॉ॰ एम॰ एल॰ सिंघवी (भारत), लार्ड मेघनाद देसाई (इंग्लैण्ड) और नरेन्द्र सिंह (दक्षिण अफ्रीका) ने किया। इस बार संस्कृति, भाषा साहित्य और डियास्पोरिक अस्मिता का सत्र तो नहीं था, किन्तु युवा पीढ़ी, शिक्षा, वैश्वीकरण और आर्थिक व्यवस्था को लेकर भारतवंशियों और भारत के सम्बन्धों पर महत्व दिया गया था। इस बार भी उद्‌घाटन के प्रारंभ में श्री सुब्रमण्यम और उस्ताद सुलतान खान के बेले और सारंगी पर संगीत बजा और प्रधानमंत्री भारत और मुख्य अतिथि श्री जगदेव, राष्ट्रपति गयाना के भाषण सुने गये। इस बार भाग लेने वाले भारतवंशियों की संख्या काफी कम लगी। हां, 10 मुख्य भारतवंशियों में स्वर्गीय कल्पना चावला का नाम रोमांचित था। इस लेख के लेखक ने भी शिक्षा के पहलुओं को लेकर 5वें सत्र में अपने विचार प्रकट किये कि जब तक शिक्षा में भारतीय वैश्वीकरण नहीं हो पायेगा, तब तक भारतवंशी भारत से बिछुड़ते रहेंगे। खुले सत्रों में श्री रूप चन्द्र, डायरेक्टर ओ३म् टी॰ वी॰ रेडियो ने फिर से ऐथिनिक मीडिया पर अपने विचार प्रस्तुत किये। इस बार इस समारोह गोष्ठी का मुद्दा यही था कि कैसे भारत और भारतवंशियों के सम्बंध सुदृढ़ हो सकते हैं और युवा पीढ़ी और शिक्षा इस रिश्ते में महत्वपूर्ण योग निभा सकते हैं।

इस बार भी मूल भारतवंशियों को कुछ ऐसा ही लगा कि उनका भारत ने स्वागत तो किया है, पर आत्मीयता में बिखराव अवश्य आ गया है। वैसे कुछ भारतीय ऐसे भी थे जिन्होंने मूल भारतवंशियों को अपने हाथों पर रखा और उनकी देखभाल भी की।

इन दो प्रवासी भारतीय दिवस समारोहों की उपलब्धियां आंकी जायें तो यह बात स्पष्ट होती है कि उनके माध्यम से भारतवंशी और भारतीयों के बीच एक नये रिश्ते की शुरूआत अवश्य हुई और आशा की जा सकती है कि भारत सरकार भारतवंशियों की समस्याओं के निवारण में योग देगी, सहायता करेगी। पिछले उदाहरण स्पष्ट हैं, उगांडा, सूरीनाम, गयाना और फिजी में भारतवंशियों को उनके जन्म सिद्ध अधिकारों से नकारा गया था। ऐसा आगे नहीं दोहराना होगा। फिर वैश्वीकरण की हवा में आंचलिक अस्मिताओं की सुरक्षा करनी होगी। भारतवंशियों की भाषा, संस्कृति, मूल्य और मान्यताओं पर ध्यान देना होगा। वैज्ञानिक शोधों से उनके बारे में और जानना होगा। जहां हिन्दी भाषा, चाहे वह किसी रूप में क्यों न हो, प्रचलित है, उसे जीवित रखना होगा। जब भाषा की मृत्यु हो जाती है तो फिर उसके जीवनदान में वर्षों लग जाते हैं। ऐसे उदाहरण हमारे सामने हैं। हॉलैण्ड के ओ३म् टी॰ वी॰ रेडियो ने आज भारतवंशियों को समझने के लिये एक पूरा डाक्यूमेन्ट्री सेट फिल्मों का बनाया है और बना रहा है। भारत सरकार से अपेक्षा की जाये कि वह इन योजनाओं में भाग ले और भारतवंशियों को इस काम के लिये आगे बढ़ाये। जिन लोगों ने भारत और भारतीयता की भावना के विकास में योग दिया है, उनका भारत सम्मान करे।

वैज्ञानिक दृष्टि में अच्छा होगा कि एक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी बुलाई जाये और उसमें प्रवासी भारतीय दिवसों को आंका जाये और सोचा जाये कि कैसे इसे और महत्वपूर्ण बना सकते हैं।

l

iokl h Hkkjrh;k dh orleku ih<h vkj ¯gnh

F तेजेन्द्र शर्मा

हम जब भी इंग्लैण्ड में हिन्दी के विषय में बात करते हैं तो हम भावानात्मक हो जाते हैं और अपनी तर्क शक्ति को ताक पर रख देते हैं। हम यह सोच कर नाराजगी जरूर जाहिर करते हैं कि युनाईटेड किंगडम में कभी जी॰ सी॰ एस॰ सी॰ में हिन्दी एक ऐच्छिक विषय के तौर पर पढ़ाई जाती थी। आज स्कूलों में हिन्दी कहीं नहीं दिखाई देती। हिन्दी मंदिरों और निजी शिक्षकों के घरों तक सीमित हो गई है।

किसी भी विषय पर बातचीत से पहले आवश्यक है कि हम उस विषय की वस्तुस्थिति को ठीक से समझ लें। वस्तुस्थिति यह है कि एक भाषा के रूप में इंग्लैण्ड में हिन्दी का वर्तमान बहुत संतोषजनक नहीं है और इसके भविष्य के लिए भी अति आशावादी बने हमें केवल कर्म करना सीखना होगा। अतीत में हिन्दी इंग्लैण्ड में स्कूलों में ऐच्छिक विषय के तौर पर पढ़ाई जाती थी, लेकिन हिन्दी स्कूलों से गायब हो गई, क्योंकि उन स्कूलों में हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थी मिल नहीं पा रहे थे। आजकल इंग्लैण्ड में बहुत-सी गैरसरकारी संस्थाएं हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्रचार-प्रसार के कामों में जुटी हैं। देश भर में हिन्दी ज्ञान प्रतियोगिताएं करवाई जा रही हैं, कहानी कार्यशालाएं की जा रही हैं, हिन्दी में कम्प्यूटर में काम-काज पर ध्यान दिया जा रहा है। लेकिन बिना किसी विश्वविद्यालय से पंजीकृत हुए यह गतिविधियां आधिकारिक स्वरूप नहीं पा सकती हैं।

हमें भावनाओं को तज कर इस ओर ध्यान देना होगा कि आखिर ऐसा हुआ क्यों ? निरपेक्ष रूप से किसी नतीजे पर पहुंचना होगा। जब हम भारत से इंग्लैण्ड आए प्रवासियों पर नजर डालें तो पाएंगे कि भारत से इंग्लैण्ड आने वालों में सबसे अधिक संख्या पंजाब एवं गुजरात प्रदेशों से है। पंजाब से आने वालों में भी सिख धर्म के अनुयाईयों की संख्या कहीं अधिक है, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं पंजाबी है। इसके अतिरिक्त तमिल, पंजाबी, बंगाली एवं महराष्ट्रियन भी काफी संख्या में यहां प्रवासी बनकर आए। इन सभी के लिए हिन्दी बोलचाल की भाषा तो थी, लेकिन कहीं भी लिखने-पढ़ने वाली भाषा नहीं थी। इसलिए जब पहली पीढ़ी के प्रवासियों ने पाया कि उन्हें विलायत में सबसे अधिक समस्या अंग्रेजी न आने से हो रही है तो उन्होंने अपनी आगामी पीढ़ी से घर में तो अपनी मातृभाषा में बातचीत जारी रखी, लेकिन बाहर दुनिया से संघर्ष करने के लिए उन्हें अंग्रेजी सीखने के लिए बढ़ावा दिया। यानि कि इंग्लैण्ड आने वाले अधिकतर भारतीय मूल के परिवारों के लिए हिन्दी मात्र एक बोली थी जिसके माध्यम से वे दूसरे राज्य के रहने वालों से बातचीत कर सकते थे यानि कि संपर्क भाषा। और संपर्क भाषा भी निम्न मध्य वर्ग के लोगों के लिए। मध्य वर्ग या फिर उच्च मध्य वर्ग की संपर्क भाषा अंग्रेजी ही थी। हमें याद यह रखना होगा कि यह भी प्रवासियों की पहली पीढ़ी तक ही सीमित था। उसके बाद की पीढ़ियों की अपनी एक जबान बन चुकी थी अंग्रेजी।

हिन्दी बोलने वाले परिवारों में भी बच्चों को यही कहा जाता था, ''अरे, हिन्दी सीख लो। कल को भारत जाओगे, तो दादी और नानी से कैसे बात करोगे।'' मूलभूत समस्या यह है कि जो लोग अपने बच्चों को यह समझाया करते थे, आज वही दादा-दादी और नाना-नानी बन चुके हैं और उन सबको अंग्रेजी आती है। इसलिए उनके लिए आज के बच्चों को दादी और नानी के हवाले देकर हिन्दी सीखने के लिए कहना भी संभव नहीं।

पहली पीढ़ी के प्रवासियों के पास न तो कई जरिया था, न ही हिम्मत कि वे हिन्दी के लिए समय निकाल पाते। शायद उन्हें इसकी आवश्यकता भी नहीं थी। उस समय न कोई हिन्दी का रेडियो स्टेशन था और न ही किसी अंग्रेजी के रेडियो अथवा टेलीविजन सेण्टर से ही कोई हिन्दी के कार्यक्रम प्रसारित होते थे। जीवन इतना संघर्षपूर्ण था कि हिन्दी के लिए समय निकाल पाना लगभग अय्याशी के समान हो जाता।

अस्सी के दशक में वीडियो रिकॉर्डर की लोकप्रियता और हिन्दी फिल्मों की कानूनी और गैरकानूनी वीडियो कैसेटों ने इंग्लैण्ड में हिन्दी को लोकप्रिय बनने का अचानक एक अभूतपूर्व अवसर प्रदान किया। बच्चे, बड़े सभी इकट्ठे बैठकर अमिताभ बच्चन की फिल्में देखा करते थे। शोले फिल्म के डायलॉग याद करके इंग्लैण्ड के बच्चे भारत से आने वाले अतिथियों पर अपने हिन्दी ज्ञान की धाक जमाते थे। प्रवासियों की पहली पीढ़ी को भी अचानक जैसे अपने पैरों तले एक नई जमीन का अहसास होने लगा था। डॉ॰ हरिवंशराय बच्चन अवश्य ही हिन्दी के महान् कवियों में से एक हैं। किन्तु हिन्दी भाषा को लोकप्रिय बनाने के मामले में उनके पुत्र अमिताभ ने उन्हें कहीं पीछे छोड़ दिया।

स्कूलों में हिन्दी पढ़ने की न तो किसी को आवश्यकता महसूस होती थी और न ही किसी को इस बात का ख्याल ही आता था। हिन्दी भाषी परिवारों को इस बात की प्रसन्नता थी कि उनकी संतानें कम से कम हिन्दी बोलने तो लगी हैं। वहीं गैरहिन्दी भाषी परिवारों के लिए फिल्में भारत से जुड़ने के एक साधन के रूप में उभरकर आई थीं। इंग्लैण्ड में भारत से जुड़ाव के लिए हिन्दी फिल्मों के अतिरिक्त भारतीय क्रिकेट का भी खासा योगदान रहा। खासतौर पर कपिल देव

की टीम द्वारा 1984 में क्रिकेट के विश्व कप विजेता के रूप में उभरकर आने से भी यहां के बच्चों का भारत के प्रति अधिक सकारात्मक रुख पैदा हुआ। यही वह समय भी था कि जब बीबीसी ने रामायण और महाभारत जैसे विशुद्ध भारतीय टेलीविजन सीरियल अपने चैनल पर दिखाने शुरू किये। भारतीय परिवारों के पास आज भी उन सीरियलों की रिकॉर्ड की गई वीडियो कैसेट मिल जाएंगी। भारतीय मूल के परिवारों में हिन्दी का माहौल पैदा करने में इन दो महत्वपूर्ण सीरियलों का योगदान कभी नहीं भुलाया जा सकता।

जी॰ टीवी का अगमन इंग्लैण्ड में हिन्दी के लिए एक महत्वपूर्ण घटना माना जा सकता है। अब उन घरों की दीवारें भी हिन्दी सुन सकती थीं जहां पहली व दूसरी या तीसरी पीढ़ी या तो अपनी मातृभाषा में बातचीत करती थीं या फिर अंग्रेजी में। भारत में भी हिन्दी फिल्में मुख्यधारा की फिल्में मानी जाती हैं तो अन्य भाषाओं की फिल्में केवल क्षेत्रीय सीमाओं में बंध कर रह जाती हैं। फिर मराठी, गुजराती, पंजाबी, हरियाणवी आदि भाषाओं की आम फिल्मों का स्तर भी कुछ विशेष अच्छा नहीं होता। इसलिए भी जी॰ टीवी के लिए एक महत्वपूर्ण पल था और उनके सामने कोई प्रतियोगी भी नहीं था। लेकिन एक बात देखी गई कि भारतीय मूल के ब्रिटिश बच्चे बॉलीवुड की फिल्मों में तो रुचि रखते हैं, वहीं टेलीविजन सीरियल क्योंकि लम्बे खिंचते जाते हैं, यहां के बच्चे उनसे कतराते हैं। जहां एक ओर सनराईज रेडियो के रवि शर्मा, सरिता सभरवाल, रिकी लोबो, राम भट्ट इत्यादि तो भारतीय मूल के बच्चों के चहेते बन जाते हैं, वहीं हिन्दी टेलीविजन सीरियल उनके साथ कोई संबंध स्थापित नहीं कर पाते हैं।

हिन्दी की मूलभूत समस्या यह भी है कि भारत में ही उसको उसका उचित स्थान नहीं मिल पाया है। विदेशों में अब तक हुए सभी विश्व हिन्दी सम्मेलनों में एकमत से यह प्रस्ताव पारित किया जाता रहा है कि ''हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाया जाए।'' किसी भी भाषा के साथ इससे बड़ा मजाक हो ही नहीं सकता कि जो भाषा किसी देश की संसद की भाषा बनने के काबिल भी नहीं मानी जाती, उसे संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा क्यों और किसके लिए बनाया जाए। जब कोई भूतलिंगम या श्रीनिवासन संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत का प्रतिनिधित्व करेगा तो उसे स्वयं ही हिन्दी भाषा समझ नहीं आएगी। तो फिर यह नाटक किसके लिए कि हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाया जाए। उसे वहां सुनेगा कौन ? जब भारतीय मूल के लोग अपने बच्चों को लेकर भारत यात्रा पर जाते हैं तो बच्चे यह देखकर हैरान हो जाते हैं कि भारत में उनके समव्यस्क हिन्दी बोलना छोटेपन का द्योतक मानते हैं। वहां का युवावर्ग इंग्लैण्ड के युवाओं से अधिक अंग्रेजीदां है।

यह पूछना एक फैशन-सा भी बन गया है कि यदि जापान और जर्मनी बिना अंग्रेजी के आर्थिक ऊंचाईयों तक पहुंच सकते हैं, तो फिर भारत में हिन्दी की इतनी दुर्दशा क्यों। भारत एक विशाल देश है जिसकी एक भाषा कभी भी नहीं रही। हिन्दी कभी भी भारत में राजकाज की भाषा नहीं रही है। यह कभी संस्कृत थी तो कभी उर्दू और आज यह स्थान अंग्रेजी के हिस्से में है। इसलिए यह प्रश्न एक प्रकार से बेमानी-सा हो जाता है। जो भाषा कभी भी पूरे भारत की भाषा नहीं रही, वो भला जापानी या जर्मनी भाषा का मुकाबला किस प्रकार कर सकती है।

कहीं कहीं गलतफहमी यह भी है कि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। वास्तविकता यह है कि हिन्दी को भारत की राजभाषा घोषित किया गया था और जब तक हिन्दी पूरी तरह से कामकाज के काबिल नहीं बन जाती, राजकाज का काम अंग्रेजी में भी किया जाएगा। यह ''अंग्रेजी में भी'' आजतक ''अंग्रेजी में ही'' बना हुआ है। भारत सरकार पचपन वर्षों में भी हिन्दी को इतना सक्षम नहीं बना पाई है कि राजकाज का काम हिन्दी में किया जा सके। ''अंग्रेजी में भी'' के स्थान पर सरकारी कामकाज ''हिन्दी में भी'' करवाया जाता है।

इंग्लैण्ड में जब किसी भी अथवा किसी अन्य भारतीय भाषा के कार्यक्रम में जाने का अवसर मिलता है तो दिल में कहीं एक अन्जाना-सा डर बैठने लगता है कि अगले कार्यक्रम से पहले कौन-सा पीला पत्ता पेड़ से गिर चुका होगा। उन कार्यक्रमों में आने वालों की औसत आयु पचास वर्ष के ऊपर ही महसूस होती है। इस देश की नई पीढ़ी को हिन्दी साहित्य के कार्यक्रमों में तो कोई रुचि नहीं है, लेकिन देखने को मिला है कि जब कभी बॉलीवुड के कार्यक्रम होते हैं या फिर ऐसे हास्य नाटकों का मंचन हो, जैसे कि शादी एट बरबादी डॉट काम, नॉटी एट फॉर्टी, हनीमून इत्यादि तो नई पीढ़ी भी हंसने के लिए पहुंच जाती है।

जिस प्रकार भारतीय उच्चायोग, यू॰के॰ हिन्दी समिति, कथा (यू॰के॰), गीतांजलि बहुभाषी समाज, कृति यू॰के॰, भारतीय भाषा संगम इत्यादि संस्थाएं इग्लैण्ड में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में जुटे हैं, निःस्वार्थ भाव से देश भर में हिन्दी पढ़ाते अध्यापक एवं साथ ही साथ बॉलीवुड की फिल्मों को इंग्लैण्ड की मुख्यधारा सिनेमाघरों में दिखाने की शुरुआत हुई है, उससे उम्मीद बंधती है कि हमें निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है। मंजिल दूर अवश्य हो सकती है, किन्तु यात्रा में सफलता अवश्य मिलेगी।

एक उदाहरण अपने घर में भी देना चाहूंगा। मेरी गुजराती पत्नी मेरे छोटे पुत्र से (जिसका जन्म लंदन में ही हुआ था) गुजराती में बात करती है। मेरा पुत्र उसे हिन्दी में जवाब देता है, लेकिन मेरी ओर देखते ही अंग्रेजी में बात करने लगता है। है न खासी दिलचस्प स्थिति !

74-A, Palmerston Road,
Harrow, HA3 &RW,
Middlesex, United Kingdom

l

fodkl e yxh lLFkk, ¼2½

F उषा राजे सक्सेना

श्रीमती उषा राजे सक्सेना प्रवासी साहित्य लेखन का एक यशस्वी नाम है। वह लंदन में रहती हैं और भारत उनके हृदय में रहता है। गोरखपुर के गांव-गलियां आज भी उनकी चेतना में मोड़ लेती हैं। उषा राजे सक्सेना सृजनात्मक प्रतिभा सम्पन्न एक ऐसी लेखिका हैं जिनके साहित्य में अपने देश, सभ्यता, संस्कृति तथा भाषा के प्रति गहरे और सच्चे राग के साथ प्रवासी जीवन के व्यापक अनुभवों और गहन सोच का मंथन मिलता है जिससे एक नई जीवनदृष्टि विकसित होती है। उषा जी की कहानियां घटनाओं के माध्यम से अत्यंत गहरे प्रवासी यथार्थबोध का मनोवैज्ञानिक परिचय देती हैं। हिन्दी के प्रचार प्रसार से जुड़ी उषा राजे सक्सेना का लेखन (हिन्दी, अंग्रेजी) पिछली सदी के सातवें दशक में साउथ लंदन के स्थानी पत्र-पत्रिकाओं एवं रेडियो प्रसारण के द्वारा प्रकाश में आया। उषा जी का रचना संसार विस्तृत है। कुछ रचनाएं जापान के ओसाका विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित हैं। 'अतिथि देवो भव' की भारतीय परम्परा का निर्वाह करने में उषा जी एवं उनके पति श्री के. बी. एल. सक्सेना जी से लंदन गए सभी लेखकगण परिचित हैं। हम उनकी पुस्तक 'ब्रिटेन में हिन्दी का इतिहास' की शृंखलाबद्ध लेखमाला का प्रकाशन कर रहे हैं। **संपादक**

पिछले अंक में...

हिन्दी भाषा का उन्नयन प्रिंटिंग प्रेस की क्रांति के साथ 16वीं सदी में नागरी लिपि के टाइप के ढलाई के साथ 1567 में ब्रिटेन में आरंभ हुआ। 1865 में ब्रिटिश सरकार ने लंदन से भारत के लैफ्टिनेन्ट गवर्नर को आदेश दिया कि भविष्य में ब्रिटिश शासनाधीन भारत के प्रत्येक क्षेत्र से देशी भाषाओं के सभी मुद्रित समाचार पत्रों, पुस्तकों और पत्रिकाओं की सूची बनाकर लंदन भेजी जाए...यानी 1865 में भी हिन्दी यानी देवनागरी पढ़ने वाले ब्रिटेन में मौजूद थे।

ठीक उसी बीच जब लोग आपस में जुड़ने को आतुर हो रहे थे, 1990 में भारतीय राजदूत डॉ॰ लक्ष्मीमल्ल सिंघवी और कमला सिंघवी के आगमन एवं संरक्षण से ब्रिटेन के हिन्दी संसार में एक अद्‌भुत स्वर्णिम युग का आरंभ हुआ। महामहिम सिंघवी जी के घर पर गोष्ठियां आदि होने लगीं जिसमें मात्र भारत के ही नहीं, ब्रिटेन के विभिन्न शहरों के उभरते हुए कवि, लेखक, साहित्यकार आदि भी भाग लेने से प्रकाश में आने लगे। इस दशक में बर्तानियां में रहने वाले भारतवंशियों के हृदय में हिन्दी के प्रति जो प्यार जागा, वह प्रवासी हिन्दी साहित्य के इतिहास में सदा अविस्मरणीय होगा। डॉ॰ सिंघवी ने नेहरू केन्द्र को गतिशील किया, शेक्स्पीयर की जन्म स्थली पर गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर की मूर्ति की स्थापना की, मैनचेस्टर में डॉ॰ हरिवंशराय बच्चन के नाम से हिन्दी के चेयर की स्थापना की। उन्होंने हर सभा और हर उत्सव में हिन्दी भाषा और संस्कृति पर सारगर्भित भाषण देकर जनता को प्रेरणा प्रदान की।

डॉ॰ लक्ष्मीमल्ल सिंघवी एवं कमला सिंघवी के प्रोत्साहन से ही 'यू॰के॰ हिन्दी समिति' एक बहुमुखी और गतिशील संख्या के रूप में विकसित हुई। आज यू॰के॰ हिन्दी-समिति ब्रिटेन की एक बृहत एवं महत्वपूर्ण संस्था है जिसकी स्थापना 1990 में ईस्ट लंदन में श्री प्रेमचंद सूद और उनके साथियों द्वारा की गई थी। पद्‌मेश गुप्त ने उस समय प्रेमचंद सूद के संरक्षण में 'हिन्दी' नाम से कम्प्यूटर से एक छोटी-सी हिन्दी की मासिक पत्रिका प्रकाशित की जो अल्पआयु रही।

उसी समय 'लंदन बारो मर्टन' के मुख्य धारा के स्कूलों में 'बायलिंगुएलिज्म' पर काम करते हुए मैंने भी स्वतंत्ररूप से साप्ताहांत पर हिन्दी की साहित्यिक और शिक्षण संस्थाओं के साथ कार्य करना आरम्भ किया। इस समय हिन्दी समिति, भारत से आए साहित्यकारों के व्याख्यान और स्थानीय गोष्ठियां आदि करते हुए हिन्दी प्रेमियों को आपस में जोड़ने का कार्य आरम्भ कर चुकी थी। अतः हिन्दी के कार्यक्रमों में लोगों की उपस्थिति बढ़ने लगी थी।

1993 में हिन्दी भाषा-साहित्य और संस्कृति के उन्नयन के लिए भारतीय उच्चायोग के सहयोग से 'अहिंसम भारतीय-मैनचेस्टर' संस्था मैनचेस्टर में स्थापित हुई। उसी वर्ष इंडियन एसोसिएशन मैनचेस्टर के कार्यकर्ता डॉ॰ लता पाठक, राम पाण्डे और डॉ॰ रंजीत सुमरा ने 25-26 सितंबर को दो दिवसीय भव्य अंतरराष्ट्रीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन आयोजित किया। 'अहिंसम भारतीय-मैनचेस्टर' के इस कार्यक्रम में डॉ॰ लक्ष्मीमल्ल सिंघवी (तत्कालीन उच्चायुक्त) श्रीमती कमला सिंघवी, हिन्दी अधिकारी डॉ॰ सुरेन्द्र अरोड़ा, मैनचेस्टर के महापौर, लंदन विश्वविद्यालय के हिन्दी के प्राध्यापक डॉ॰ रूपर्ट स्नेल, भारत से आए कवि दिनकर, हसरत जयपुरी, मजरूह सुल्तानपुरी, पद्‌मा सचदेव, जर्मनी से आईं मार्ग्रेट गात्जलाफ, हंगरी की मारिया नेज्येत्शी, नार्वे के सुरेशचंद्र शुक्ल आदि ने भाग लिया। 1993 के इस सम्मेलन के आयोजन में 'यू॰के॰ हिन्दी समिति' के हम सभी सदस्यों ने अपना पूरा सहयोग दिया। इस दो दिवसीय हिन्दी के कार्यक्रम में विराट कवि सम्मेलन, भाषा सम्मेलन और सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि हुए। इसी सम्मेलन में मैनचेस्टर विश्वविद्यालय में डॉ॰ हरिवंशराय बच्चन के नाम से 'चेयर' की स्थापना हुई। अहिंसम भारती ने 'यूरोप में प्रथम अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन 25-26 सितंबर, 1993 मैनचेस्टर, इंग्लैण्ड' नामक स्मारिका प्रकाशित की, जिसमें डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी जी का लिखा 'हिन्दी हम सब की परिभाषा' नामक बोध-गीत इंग्लैण्ड में पहली बार यू॰के॰ में प्रकाशित हुआ।

इस तरह के विराट कवि सम्मेलनों और भाषा सम्मेलनों जैसे साहित्यिक कार्यक्रमों से यू॰के॰ वासी उत्फुल हो उठे। यह उनके लिए यह नया अनुभव था, पूरी तरह जड़ों की ओर लौटने के लिए। धीरे-धीरे भूले-बिसरे हिन्दी प्रेमी, हिन्दी और हिन्दी साहित्य से इस तरह जुड़ने लगे जैसे कि उनकी कोई अवचेतन मन की मुराद पूरी हो गई हो। इस तरह 1993 के अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन की सफलता को देखते हुए, यू॰के॰ हिन्दी समिति के अध्यक्ष डॉ॰ पद्मेश गुप्त, उपाध्यक्ष उषा राजे, के॰बी॰एल॰ सक्सेना एवं ब्रिज गोयल और अन्य हिन्दी प्रेमियों ने मिलकर डॉ॰ लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के सरंक्षण और दूतावास के सहयोग से प्रतिवर्ष हिन्दी-दिवस के अवसर पर यू॰के॰ हिन्दी समिति के तत्वाधान में अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन के आयोजन का सिलसिला एक आंदोलन की तरह हिन्दी भाषियों को आपस में जोड़ने के लिए आरम्भ किया।

1993 से भारत के लब्धप्रतिष्ठ कवियों, साहित्यकारों का हर वर्ष लंदन अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन के लिए आना प्रारम्भ हो गया और राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय कवियों और साहित्यकारों को ब्रिटेन में एक साथ मंच मिलने लगा। हिन्दी भाषी उस देश में खुलकर आपस में हिन्दी बोलने लगे जहां वह पिछले तमाम वर्षों से संकुचित-सी थी। यह एक दशक था जब बाजारों में भारतीय वस्त्र, गहने, मिठाइयां, सब्जियां, वीडियो कैसेट, पुस्तकें आदि खुलकर सुपर मार्केट जैसे सार्वजनिक स्थानों में बिकने लगीं। नाटकशालाओं में हिन्दी नाटक, नृत्य, सिनेमाघरों में हिन्दी फिल्में, मंदिरों में भजन-कीर्तन, सभाओं में व्याख्यान, गोष्ठियां, कार्यशालाएं, पठन-पाठन और शादी-ब्याह सबकुछ खुलकर भव्य स्तर पर होने लगा। यानी ब्रिटिश भारतीय अपना परिवेश अपनी रुचि के अनुसार ब्रिटेन में बनाने लगे। स्थानीय अंग्रेज जाति के लोग, एशियन लोगों के साथ मिलकर स्वयं भारतीय शैली के बाजार और मेले जैसे आयोजन खुले मैदानों और पार्कों में आयोजित करने लगे। उन्हीं दिनों कई प्रसिद्ध भारतीय विवाह और संस्कार आदि भी टी॰वी॰ पर दिखाए गए।

हिन्दी भाषा और परिवेश की महत्ता को बताते हुए कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रवक्ता डॉ॰ सत्येन्द्र श्रीवास्तव जी ने अपनी पुस्तक 'टेम्स में गंगा की धार' में एक जगह कहा है कि हिन्दी की अपनी कोई मानक भौगोलिक सत्ता नहीं है, वह विश्व की भाषा है अर्थात् हिन्दीभाषी लोग किसी क्षेत्र विशेष में नहीं रहते जैसे कि गुजराती, पंजाबी, बंगाली। हिन्दी किसी जाति अथवा धर्म विशेष की भाषा नहीं है, यह भारत की सार्वभौमिक भाषा है, राजभाषा है, पूरे देश की भाषा है। भारत की सम्पर्क है। यह भाषा भारत को अतिक्रमण करती एशिया से होती हुई यूरोप को पार करती अमेरिका पहुंचती हुई विश्व की भाषा बन जाती है। जहां-जहां भारतीय है यह वहां-वहां की भाषा है।

वस्तुतः वर्तमान ब्रिटेन में हिन्दी के उन्नयन और प्रचार-प्रसार में भारत के भी कई स्रोतों का सहयोग रहा है। ब्रिटेन में हिन्दी के कार्यों का समन्वय विदेश मंत्रालय के हिन्दी विभाग द्वारा किया जाता है। पिछले तेरह-चौदह वर्षों में भारत का विदेश मंत्रालय, ब्रिटेन में होने वाले अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों में श्रेष्ठ और जनप्रिय कवियों व साहित्यकारों को भेज कर, ब्रिटेन की संस्थाओं का मनोबल बढ़ाते हुए उन्हें सफलता की ओर अग्रसर करता रहा है।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पिछले सात-आठ वर्षों से ब्रिटेन में होने वाले प्रत्येक अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन और सांस्कृतिक कार्यक्रम में लोकप्रिय गीतकारों और कवियों को ब्रिटेन भेज कर, हिन्दी के प्रचार-प्रसार में हमारी सहायता कर रहा है। इस तरह के साहित्यिक कार्यक्रमों द्वारा संस्थान हिन्दी प्रेमी सामान्य जनता के साथ ब्रिटेन की अगली पीढ़ी की को भी सक्रिय करने का प्रयास कर रहा है।

यू॰के॰ में हिन्दी के उन्नयन के लिए कार्य करती बहुत-सी स्वैच्छिक संस्थाएं हैं जो पूरे बिटेन में फैली हुई हैं। इन सभी सस्थाओं के कार्य क्षेत्र एवं लक्ष्य भिन्न हैं। आजकल लगभग इन सभी संस्थाओं में परस्पर गहन संबंध एवं वार्तालाप है। इन संस्थाओं के सभी कार्यकर्ता निःस्वार्थ भाव से केवल हिन्दी-प्रेम से प्रेरित होकर बड़ी लगन और योजनाबद्ध ढंग से अपने व्यस्त जीवन में से समय निकालकर बिना किसी सरकारी अनुदान के हिन्दी सेवा का कार्य स्वैच्छिक ढंग से कर रहे हैं।

आज की तारीख में निम्नलिखित संस्थाएं हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए प्रतिबद्ध हैं और विश्व के हिन्दी जगत में अपने कार्य और निष्ठा के लिए जानी-पहचानी जाती हैं।

1. भारतीय उच्चायोग

भारतीय उच्चायोग आरम्भ से ही भारतीय संस्कृति और हिन्दी के प्रचार-प्रसार से जुड़ा रहा है। 70वें दशक से श्री धर्मेन्द्र गौतम जी के द्वारा भारतीय उच्चायोग में हिन्दी के पठन-पाठन के लिए कक्षाएं आयोजित की जाती रही हैं। परंतु हिन्दी के पठन-पाठन का यह कार्य 1984 से और भी अधिक गतिशील एवं सुनियोजित ढंग से होने लगा, जब भारत से हिन्दी एवं संस्कृत अधिकारियों के आने का सिलसिला जुड़ा। इन हिन्दी अधिकारियों ने ब्रिटेन निवासी भारतीय जनता और हिन्दी के उन्नयन में संलग्न संस्थाओं से संबंध जोड़कर उन्हें प्रोत्साहित किया। आज जिस स्तर पर हिन्दी का कार्य ब्रिटेन में हो रहा है, उसमें न केवल हिन्दी अधिकारियों का सहयोग है बल्कि भारतीय उच्चायुक्त से लेकर संस्कृति समन्वय अधिकारियों तक का योगदान भी होता है। पिछले दो-तीन वर्षों से ब्रिटेन में हिन्दी-प्रसार के योजनाबद्ध विकास का काफी कुछ श्रेय वर्तमान हिन्दी अधिकारी अनिल जी के दिशा निर्देश और सहयोग का है।

2. भारतीय विद्या भवन, लंदन-1972

भारतीय विद्या भवन भारती संस्कृति और हिन्दी भाषा को ब्रिटेन में अक्षुण्ण रखने वाली सबसे पुरानी प्रख्यात संस्था है। यह संस्था भारत सरकार से संबंधित होते हुए भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखती है और भारतीय विद्या भवन के भूतपूर्व निदेशक डॉ॰ माथुर, कृष्णामूर्ति और निदेशक डॉ॰ नन्दकुमार के निर्देश में पिछले 33 वर्षों से निरंतर भारतीय संस्कृति एवं भाषा के उन्नयन का कार्य कर रही

है। भारतीय विद्या भवन में अन्य भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी की कक्षाएं लगती हैं। यह संस्था हिन्दी भाषा सम्मेलन, कवि गोष्ठी, काव्य सम्मेलन, नाटक, क्लासिकल नृत्य आदि का प्रमुख रूप से मंचन करती हैं। इस संस्था से भारत के महान विद्वान जुड़े हुए हैं। दुनिया के हर कोने में भारतीय विद्या भवन की शाखाएं होने के साथ ब्रिटेन के अन्य शहरों में भी इसकी शाखाएं हैं। संस्था प्रसिद्ध हिन्दी की साहित्यिक पत्रिका 'नवनीत' का प्रकाशन नियिमित रूप से करती है।

3. नेहरू केन्द्र, लंदन-1992

नेहरू केन्द्र भारतीय उच्चायोग का ही एक भाग है जिसमें भारतीय संस्कृति की सभी कलाओं को प्रश्रय दिया जाता है। यह केन्द्र भारतीय एवं ब्रिटिश संस्कृति के बीच पुल बनाता है। नेहरू केन्द्र नाटक, नृत्य, संगीत, भाषा-साहित्य सम्मेलन, कला एवं पुस्तक प्रदर्शनी आदि का उत्कृष्ट आयोजन करता है। यह एक ऐसा बहुभाषीय केन्द्र है जिसके पुस्तकालय में आपको संसार की हर संस्कृति पर प्रमाणिक पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाएं मिल जाएंगी।

4. यू॰के॰ हिन्दी समिति, लंदन-1992

यू॰के॰ हिन्दी समिति ब्रिटेन की एक ऐसी बृहत स्वैच्छिक संस्था है जो अपने सदस्यों एवं साथियों के सहयोग से हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए यू॰के॰ में एकमात्र हिन्दी की साहित्यिक पत्रिका 'पुरवाई' का प्रकाशन करते हुए विश्व भर के साहित्यकारों, लेखकों एवं कवियों को मंच देती है। यह संस्था वर्ष में एक बार हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में आई॰सी॰सी॰आर॰ और हिन्दी संस्थान लखनऊ के सहयोग से अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन, भाषा सम्मेलन जैसे आयोजन लंदन तथा ब्रिटेन के अन्य शहरों में अन्य संस्थाओं के सहयोग से आयोजित करती है। 1999 में हिन्दी समिति ने ब्रिटेन की अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर लंदन विश्वविद्यालय के प्रागंण में 14-18 सितंबर को 'छठा विश्व हिन्दी सम्मेलन' आयोजित किया जिसमें भारत एवं देश-विदेश के लगभग साढ़े चार सौ विद्वानों ने भाग लिया था।

हिन्दी समिति का विशेष लक्ष्य है, दूसरी और तीसरी पीढ़ी के युवा और बच्चों के अंदर हिन्दी के प्रति रुचि जगाना। इसके लिए हिन्दी समिति ने एक महत्वाकांक्षी योजना 'हिन्दी परामर्श मण्डल' के अंतर्गत तैयार की। हिन्दी परामर्श मण्डल ने इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड, वेल्स और आयरलैण्ड के तमाम छोटे-बड़े हिन्दी शिक्षण केन्द्रों की नेटवर्किंग करके ब्रिटेन में 'यूरोपियन हिन्दी शिक्षक सम्मेलन' आयोजित किया। इस तरह हिन्दी समिति ने बच्चों को हिन्दी पठन-पाठन की ओर प्रेरित करने के लिए हिन्दी शिक्षण केन्द्रों को एक सूत्र में पिरोया, हिन्दी शिक्षण योजना की ठोस नींव डाली, साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर 'हिन्दी ज्ञान प्रतियोगिता' की योजना भी बनाई। अब तक ब्रिटेन में दो हिन्दी ज्ञान प्रतियोगिताएं हो चुकी हैं। इन प्रतियोगिताओं में पिछले वर्ष, यानी 2002 में लगभग 500 बच्चों ने भाग लिया था जिसमें पहले नौ सफल विद्यार्थियों को पुरस्कार स्वरूप हिन्दी ज्ञान वर्धन को ध्यान में रखते हुए भारत भ्रमण तथा भारत दर्शन के लिए हवाई यात्रा का टिकट दिया था।

समय-समय पर अन्य 'चैरिटेबल' कार्य करते हुए हिन्दी समिति ब्रिटेन के लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिए यू॰के॰ में हिन्दी साहित्यिक लेखन की 'पांडुलिपि-प्रतियोगिता' कर उसके विजेता की पुस्तक को प्रकाशित कर उसके लोकार्पण तथा चर्चा किसी विशिष्ट साहित्यकार से कराती है। समिति अपने 'हिन्दी परार्मश मंडल' (गठन-2001) के सहयोग से हिन्दी के उन्नयन के लिए उच्चकोटि के सेमिनार आदि संयोजित करती है, अपने वार्षिक उत्सव में भारत तथा यू॰के॰ के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दूतों को चयनित कर उनको सम्मानित करती है तथा ब्रिटेन की अन्य सभी हिन्दी-सेवी संस्थाओं को उनके कार्यक्षेत्र में सहयोग देती है। इन सबके अतिरिक्त हिन्दी समिति हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए नाटक प्रदर्शन, कम्प्यूटर कार्यशाला, पुस्तक प्रदर्शनी, पांडुलिपि प्रतियोगिता, पुस्तक प्रकाशन आदि के क्षेत्र में भी कार्य करती है।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार को ध्यान में रखते हुए संस्था के कार्यक्रमों को निःशुल्क रखा गया है। हिन्दी समिति के कर्मठ कार्यकर्ताओं में श्री पद्मेश गुप्त, उषा राजे, के॰बी॰एल॰ सक्सेना, बृज गोयल और दिव्या माथुर के नाम प्रमुख हैं।

5. गीतांजलि बहुभाषीय समुदाय, बरमिंघम-1995

गीतांजलि बहुभाषीय समुदाय का क्षेत्र विस्तृत है। यह संस्था प्रतिमाह एक काव्यगोष्ठी करती है जो बहुभाषीय होती है। इसमें अधिकांश बहुभाषीय रचनाएं हिन्दी अनुवाद के साथ पढ़ी जाती हैं। विशेष बात यह है कि कवि गोष्ठी में स्थानीय नई पीढ़ी यानी बच्चे भी मातृभाषा में काव्य-पाठ के लिए आते हैं। इस संस्था ने अपने समुदाय के सदस्यों की रचनाओं को छोटी-छोटी पुस्तकों में संकलित किया है। संस्था यू॰के॰ हिन्दी समिति के साथ वार्षिक अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन का आयोजन करती है, राष्ट्रीय बहुभाषीय कवि सम्मेलन भी करती है, साथ ही समय-समय पर भाषा सम्मेलन और वर्कशाप आदि भी कराती है। इस संस्था के संचालकों में डॉ॰ कृष्ण कुमार, चित्रा कुमार और प्रफुल्ल पटेल आदि प्रमुख हैं।

6. कला-ज्योति, नॉर्थ लंदन-1995

कला-ज्योति भारतीय संस्कृति एवं हिन्दी भाषा को कवि सम्मेलनों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा जनसाधारण तक पहुंचाने और उन्हें हिन्दी-भाषा के मंच से जोड़ने के लिए हिन्दी नाटक, कविता-पाठ, अंताक्षरी, नृत्य-संगीत और त्यौहारों के भव्य उत्सव आदि सांस्कृतिक आयोजन करती है। इस संस्था की कार्यकर्ता हैं श्रीमती पुष्पा भार्गव, अहिल्या तथा मंजू सक्सेना आदि।

7. कॉवेन्ट्री लाइब्रेरी-1995

कॉवेन्ट्री में मेहरू फ्रिटर जी प्रतिमाह नियमित रूप से लगातार पिछले आठ वर्षों से एक बहुषाभाषीय गोष्ठी कॉवेन्ट्री के पुस्तकालय

में करती आ रही हैं जिसमें कवि और शायर के अतिरिक्त कोई भी काव्य प्रेमी हिन्दी या किसी अन्य भाषा में काव्य पाठ कर सकता है।

8. भारतीय भाषा संगम, यॉर्क–1999

यह संस्था यू॰के॰ हिन्दी समिति के साथ वार्षिक अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन का आयोजन करते हुए समय-समय पर राष्ट्रीय एवं स्थानीय कवि सम्मेलन एवं सेमिनार आदि का आयोजन करती है। 'भारतीय भाषा संगम' एक उभरती हुई गतिशील संस्था है जो आस-पास अधिक हिन्दी भाषी समाज न होने के बावजूद हिन्दी के कार्यक्रमों को बड़ी ही सफलता के साथ अंग्रेज और विदेशी हिन्दी प्रेमियों के साथ आगे बढ़ा रही है। भारतीय भाषा संगम के कार्यकर्ता हैं, महेन्द्र वर्मा और उषा वर्मा, आदि।

9. हिन्दी भाषा समिति, मैनचेस्टर–2000

हिन्दी भाषा समिति प्रतिवर्ष यू॰के॰ हिन्दी समिति के साथ अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन मैनचेस्टर में करती है। यह संस्था समय-समय पर कवि गोष्ठी एवं राष्ट्रीय कवि सम्मेलन तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करते हुए हिन्दी भाषियों को एक झंडे तले एकत्रित करने का दुश्कर कार्य भी करती है। हिन्दी भाषा समिति के कार्यकर्ता हैं, डॉ॰ अंजनि कुमार और श्यामा कुमार, आदि।

10. कथा यू॰के॰ लंदन–2000

कथा यू॰के॰ ब्रिटेन के कहानीकारों को आपस में जोड़ती ही नहीं है वरन् उन्हें विश्व के हिन्दी जगत में प्रतिष्ठित एवं सम्मानित भी करती है। यह प्रतिवर्ष भारत एवं ब्रिटेन की एक उत्कृष्ट साहित्यिक पुस्तक का चयन कर, जून तथा जुलाई के मध्य उसके लेखक को यू॰के॰ में सम्मानित करती है। कथा यू॰के॰ भारत के चयनित पुस्तक के लेखक को एयर इंडिया के सौजन्य से हवाई यात्रा का व्यय एवं एक सप्ताह का लंदन-आतिथ्य देती है, साथ ही उन्हें नेहरू-केन्द्र में स्मृतिचिन्ह, श्रीफल और शाल भेंट कर सम्मानित करती है। यह संस्था मासिक कथा गोष्ठियां करती है जिसमें मूल रूप से ब्रिटेन के दो कथाकार स्वलिखित रचनाएं पढ़ते हैं। कथा वाचन के बाद श्रोताओं के विचार और मत आमंत्रित होते हैं। कथा वाचन की प्रतिक्रियाएं इंटरनेट पर प्रकाशित की जाती हैं। संस्था कथा-गोष्ठी पर आधारित एक स्मारिका भी प्रतिवर्ष प्रकाशित करती है जिसमें कथा-गोष्ठी में पढ़ी गई कहानियों को गोष्ठी में हुई प्रतिक्रियाओं के साथ प्रकाशित किया जाता है। कथा यू॰के॰ ब्रिटेन में आए हिन्दी के सैलानी कथाकार अतिथियों का भी स्वागत समारोह आदि करती है। कथा यू॰के॰ की योजनाओं में कहानियों का मंचन, कहानी कार्यशाला और कहानी प्रतियोगिता आदि भी शामिल है जिसमें युवावर्ग का भी प्रतिनिधित्व होता है। कथा के सारे कार्यक्रम हिन्दी के प्रचार-प्रसार को ध्यान में रखते हुए निःशुल्क रखे जाते हैं। कथा यू॰के॰ के कार्यकर्ता हैं, श्री तेजेन्द्र शर्मा, नयना शर्मा, आदि।

11. साउथ लंदन गिल्ड ऑफ हिन्दी विमेन राइटर्स–2002

'साउथ लंदन गिल्ड ऑफ विमेन राइटर्स' एक ऐसी संस्था है जिसका उद्देश्य उन (स्थानीय प्रवासी भारतीय) महिलाओं को मदद देना है जिनके पास संवेदनशील हृदय और संघर्षों से युक्त अनुभवों का विशाल भंडार है। जो अपने अनुभव को बांटने और वाचक शैली में अभिव्यक्त करने के लिये बेचैन हैं, जिनके हृदय में महाकाव्य रच चुके हैं, परंतु उनके पास लेखनी नहीं है, शब्दों के भंडार नहीं हैं। वे मात्र भुक्तभोगी वाचक हैं। संस्था के सृजनकर्मी उनके अनुभवों, संघर्षों, यातनाओं को कविता, कहानी, लेख, उपन्यास आदि में ढालने और प्रेरित करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। ऐसी महिलाओं का परिचय, संस्था हिन्दी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी जगत के सृजकों से कवि गोष्ठी, कहानी गोष्ठी, प्रकाशन, लोकार्पण, मान-सम्मान, लेखन वर्कशाप, पुस्तक एवं कला प्रदर्शन तथा चैरिटी वर्क से कराती है। संस्था को लंदन बारो ऑफ मर्टन का प्रश्रय है। सभी कार्यकर्ता स्वैच्छिक हैं। अभी तक संस्था ने ब्रिटेन के तीन लेखकों और कवियों की पुस्तकों का प्रकाशन किया है। दो पुस्तकें प्रकाशाधीन हैं। संस्था के कार्यकर्ता हैं, उषा राजे सक्सेना, प्रतिभा डाबर, कादंबरी मेहरा, स्नेह लता टंडन, आदि।

12. कृति यू॰के॰ मिडलैण्ड–2002

कृति यू॰के॰ ब्रिटेन की एक प्रगतिशील संस्था है। कृति यू॰के॰ विभिन्न प्रकार के साहित्यिक कार्यक्रम एवं हिन्दी ज्ञान प्रतियोगिता, कहानी एवं कविता प्रतियोगिता, कवि गोष्ठी आदि आयोजित करती है। कृति यू॰के॰ के अधिकांश कार्यकर्ता अहिन्दी भाषी और तरुण वर्ग से आते हैं जो अपने आपमें एक श्रेष्ठ उपलब्धि है। अन्य साहित्यिक संस्थाओं की भांति यू॰के॰ भी चैरिटी वर्क, साहित्य सम्मेलन, भाषा सम्मेलन आदि का आयोजन कुशलता से करती है। संस्था के कार्यकर्ता हैं, तितिक्षा शाह, अनुराधा शर्मा, शैल अग्रवाल, डॉ॰ नरेन्द्र अग्रवाल, के॰के॰ श्रीवास्तव, आदि।

13. वातायन–2003

'वातायन' अभी हाल ही में स्थापित हुई संस्था है जो लंदन के फेस्टिबल हॉल में काव्य गोष्ठी, एकल पाठ आदि प्रतिमाह आयोजित करती है। संस्था गतिशील है और हिन्दी भाषा और साहित्य के उन्नयन के लिए प्रतिबद्ध है। संस्था की कार्यकर्ता हैं, श्रीमती दिव्या माथुर।

14. गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय-ट्रेंट–2004

गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय-ट्रेंट में अभी हाल में ही स्थापित हुई है।

संस्था का उद्देश्य कवि गोष्ठियों व भाषा सम्मेलनों द्वारा हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य का प्रचार-प्रसार और उन्नयन करना है। संस्था के सभी कार्यकर्ता स्वैच्छिक है। संस्था की कार्यकर्ता हैं, जया वर्मा, जुगना महाजन और डॉ॰ रवि महाजन, आदि।

पत्रिकाएं

1. अमरदीप

23 मार्च, 1971 में सरदार भगत सिंह के जन्मदिन पर प्रथम बार प्रकाशित होने वाला 'अमरदीप' समाचार पत्र पिछले चालीस वर्षों से ब्रिटेन में निरंतर निकल रहा है। जिसे ब्रिटेन के हजारों हिन्दी भाषी पढ़ते हैं। 'अमरदीप' में समाचारों के अतिरिक्त लघु कथाएं' लेख, पाक विधि, चुटकुले और कविताएं आदि भी प्रकाशित होती रहती हैं। समय-समय पर इसमें धारावाहिक उपन्यास भी छपे हैं। यह पत्रिका ब्रिटेन में लगभग सभी पुस्तकालयों में पढ़ने को मिल जाती है। 'अमरदीप' के संपादक हैं, जगदीश मिश्र कौशल।

2. पुरवाई

यू॰के॰ से प्रकाशित होने वाली एकमात्र हिन्दी की त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका 'पुरवाई' अपने 7 वर्ष पूरे कर चुकी है। पुरवाई का प्रकाशन प्रवासी लेखन को संग्रहीत करने में मील का पत्थर है। इसमें संदेह नहीं कि विश्व और भारत के बीच 'पुरवाई' एक सार्थक साहित्यिक सेतु बनकर उभरी है। पुरवाई के लेखकीय संसार में जहां भारत से कमलेश्वर, इंदु जैन, रामदरस मिश्र, कमल कुमार, डॉ॰ शिवमंगल सिंह 'सुमन', गोविंद पंत, केदारनाथ सिंह, कुंअर बेचैन, विक्रम सिंह, केशरीनाथ त्रिपाठी, बेकल उत्साही, अशोक चक्रधर, नरेश शांडिल्य आदि शामिल हैं तो ब्रिटेन से सत्येन्द्र श्रीवास्तव, उषा राजे, पद्मेश गुप्त, प्राण शर्मा, नरेश भारती, दिव्या माथुर, सोहन राही, गौतम सचदेव, शैल अग्रवाल, तितिक्षा शाह, दिवाकर शुक्ल, तेजेन्द्र शर्मा, तोषी अमृता आदि शामिल हैं। ब्रिटेन के अतिरिक्त पुरवाई में अमेरिका, जापान, मॉरीशस, त्रिनिडाड, फिजी, नार्वे, रोमानिया, हंगरी आदि जैसे देशों के सृजनकर्मी भी रचनात्मक योगदान दे रहे हैं। वस्तुतः आज ब्रिटेन में हिन्दी के कई ऐसे रचनाकार हैं जिनकी रचनाएं पहली बार पुरवाई में प्रकाशित हुईं और साथ ही कुछ ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने 'पुरवाई' के लिए ही लिखना आरम्भ किया और आज देश-विदेश के पत्र-पत्रिकाओं में छपकर ख्याति अर्जित कर रहे हैं। पुरवाई का स्तर और वितरण प्रतिदिन बढ़ रहा है।

धार्मिक व सांस्कृतिक संस्थाएं

इस तरह ब्रिटेन में और भी बहुत-सी ऐसी संस्थाएं हैं जिनके कार्य विविध हैं, जो यू॰के॰ में हिन्दी के साथ भारतीय संस्कृति में उन्नयन और प्रचार-प्रसार के लिए प्रसिद्ध हैं

लंदन ओर सरे में—भारतीय विद्या भवन, आर्य समाज भवन, आर्य समाज मंदिर, विश्व हिन्दू मंदिर साउथहाल, हिन्दू कल्चरल सोसाइटी, कला ज्योति, हिन्दू सोसाइटी टूटिंग, भारतीय ज्ञानदीप लंदन, स्लेह हिन्दू मंदिर, महालक्ष्मी सत्संग मंदिर, बालभवन, श्रीकृष्ण मंदिर, स्वामीनारायण मंदिर, कम्युनिटी सेन्टर, इंडियन एसोसिएशन।

मिडलैण्ड्स में—बालभवन, श्रीकृष्ण मंदिर, कृति यू॰के॰, गीता भवन, कॉवेंट्री में हिन्दू मंदिर, कम्युनिटी सेण्टर।

मैनचेस्टर में—भारतीय विद्या भवन, हिन्दू मंदिर, कम्युनिटी सेन्टर, इंडिया सेण्टर।

नॉटिंघम में—कला सेण्टर, श्री राम मंदिर, कम्युनिटी सेण्टर।

स्कॉटलैण्ड और वेल्स में—कम्युनिटी सेण्टर, हिन्दू मंदिर।

नार्दन आयरलैण्ड में—इंडियन कम्युनिटी सेण्टर।

इन सब के अतिरिक्त हिन्दी फिल्मों, टेलीविजन चैनल और सनराइज रेडियो आदि का हिन्दी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान ब्रिटेन में रहा है। आज हिन्दी चैनल भारतीयों के अतिरिक्त पाकिस्तानी, बंगलादेशी, कुछ अंग्रेज, सर्बियन, बोसनियन, अरबी, अफ्रीकन, सिप्रियेट्स, ईरानी आदि सभी देशों के ब्रिटेनवासी लोग ब्रिटेन में स्काई सैटलाइट और केबल के द्वारा देखते हैं।

विश्व के मानचित्र में हिन्दी की स्थिति पर दृष्टि डालें तो यह सुखद अनुभूति होती है कि हिन्दी की शब्द संख्या का जितना विस्तार पिछले 50-60 वर्षों में हुआ है, उतना विश्व की शायद ही किसी अन्य भाषा में हुआ होगा। लगभग सवा करोड़ भारतीय मूल के लोग दुनिया के सैकड़ों देशों में बसे हुए हैं। विदेश के विश्वविद्यालयों में हिन्दी के पठन-पाठन के अंतर्गत 165 विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्यन-अध्यापन की व्यवस्था है। यानी कुल मिलाकर हिन्दी के लिए अच्छा-खासा वातावरण तैयार है। वस्तुतः आवश्यकता है इसमें और अधिक सुधार की तथा इसे और अधिक स्थाई बनाने की, ताकि नई पीढ़ी में भी हिन्दी के प्रति निष्ठा और स्वीकार्य की मानसिकता विकसित हो।

l

xty

F तेजेन्द्र शर्मा, लंदन

घर जिसने किसी गैर का आबाद किया है।
शिद्दत से मेरे दिल ने उसे याद किया है।।

जग सोच रहा है कि वो है मेरा तलबगार।
मैं जानता हूं उसने ही बरबाद किया है।।

ये सोच नहीं शीशा सदा सच ही है कहता।
जो खुश करे वो आईना ईज   ाद किया है।।

सीने में हुए ज   ख्म मगर खूं नहीं टपका।
तूने ये भला कैसे ए सयाद किया है।।

तू चाहने वालों की सियासत में रहा गुम।
सच बोलने वालों को नहीं शाद किया है।।

l

Hkkjrh; vdk dk vrjjk"Vh; :i e fodkl

F डॉ. परमानंद पांचाल

भारत के संविधान के अनुच्छेद 243 (1) के अनुसार हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसकी लिपि देवनागरी लिपि होगी। किन्तु साथ ही यह भी कहा गया है कि ''संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।'' इस प्रकार केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में हिंदी की लिपि तो देवनागरी होगी, किन्तु अंक देवनागरी के न होकर अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप के होंगे। प्रश्न उठता है कि क्या अंतर्राष्ट्रीय रूप में प्रचलित अंक प्रणाली मूल रूप में भारतीय ही है ? इसका उत्तर खोजने के लिए हमें इतिहास में पीछे मुड़कर देखना होगा।

भारत और अरब देशों के व्यापारिक सम्बंध इस्लाम के अभ्युदय से भी बहुत प्राचीन हैं। प्राचीन काल में अरबों के व्यापारिक जहाज सीधे भारत के पश्चिमी तट के बन्दरगाहों पर आते थे और यहां से माल लेकर अरब और यूरोप के देशों तक जाते थे। उनके लिए व्यापार का लेन-देन भारतीय अंकों में रखना ही सुविधाजनक रहता था। अरब और यूरोप के देशों में गणित का इतना विकास नहीं हुआ था। अरब वाले स्पष्ट रूप से कहते हैं कि उन्होंने 1 से 9 तक के अंक लिखने का ढंग हिन्दुओं से सीखा और इसीलिए अरब वाले अंकों को ''हिन्दसा'' और इस प्रणाली को ''हिसाब हिंदी'' या ''हिंदी हिसाब'' कहते हैं। आज उर्दू में भी इसीलिए अंकों के लिए ''हिन्दसा'' शब्द प्रचलित है। अमीर खुसरो (1253-1325) अपनी रचना नूह-सिपहर में भारत की महानता के पक्ष में जो दस तर्क प्रस्तुत करते हैं, उनमें चौथा तर्क यह है

''हुज्जते चारूम रक्मे'' हिन्दसः बीन,
कहले जहॉन वज   अ, न दीदन्द चुनीन।
हम व यकीं 'सिपर' केह नक   शीत तेही,
बीन चेह रमूजस्त चू हज्जीश देही।

अर्थात चौथा तर्क ''इल्मे-हिन्दसा'' (अंक विद्या) या अंकों को लिखने का ढंग है, जिसका उदाहरण संसार में कहीं नहीं मिलता। केवल ''सिफर'' (शून्य) को ही लीजिए, यह मात्र एक चिह्न है, किन्तु इसमें कितने रहस्य छिपे हैं। गणित ज्योतिष और ज्यामिती तथा अन्य विज्ञान इसके ऋणी हैं। ''शून्य'' के अभाव में तो इनका अस्तित्व ही न हो पाता। इस प्रकार वे कहते हैं कि हिन्दसा भारत की देन है और ''शून्य'' का आविष्कार भारत में हुआ था, जिसके लिए विश्व भारत का ऋणी है।

''हिन्दसा'' शब्द ''हिन्द'' और ''असा'' से मिलकर बना है। ''असा'' नाम का एक ब्राह्मण था, जिसने अंक प्रणाली का परिचय अरबों को कराया था। उसी के नाम से ''हिन्दसा'' शब्द का प्रचलन हुआ। इससे पता चलता है कि अंकों का प्रयोग भारत से ही अरब आदि देशों में गया था। यूरोपीय देशों में तो यह प्रणाली अरब देशों से गई थी। इसलिए यूरोप के देशों में इन्हें ''अरबी अंक'' अर्थात Arabic numerals कहा जाता है, जबकि अरब वाले इन्हें हिन्द से गए मानते हैं। विश्व के सभी गणितशास्त्री इन अंकों को ''हिन्दू-अरेबिक'' अंकों के नाम से अभिहित करते हैं। जी॰एफ॰हिल नामक गणितज्ञ ने भी अपने ग्रंथ The Development of Numerals in Europe में इसकी पुष्टि की है। मेसोपोटेमिया के सिवेरस सिबारेन्ट नाम के एक पादरी द्वारा ईसा की सातवीं शताब्दी के मध्य में लिखी गई गणित की पुस्तक में सबसे पहले इनका प्रयोग मिलता है। लगभग इसी काल में भारतीय ज्योतिष और गणित का प्रवेश भारत से अरब के देशों में हुआ था। वहीं से स्पेन के रास्ते यूरोप के देशों में पहुंचा था।

मध्य पूर्व के देशों में इस्लाम के प्रचार के साथ बग   दाद शिक्षा और ज्ञान का एक महान केन्द्र बन गया था, जहां अरब, यूनानी, ईरानी, यहूदी तथा अन्य देशों के विद्वान परस्पर विचार विनिमय के लिए एकत्रित होते रहते थे। सन् 771 ई॰ में भारत से भी विद्वानों का एक शिष्टमंडल मंसूर के दरबार में बग   दाद गया था। उसके साथ एक पंडित गणित ज्योतिष की एक पुस्तक जिसका नाम ''बृहस्पति सिद्धांत'' था, अपने साथ ले गया था। उसका वहां ''अससिंद हिन्द'' के नाम से अरबी में अनुवाद किया गया। उसी से भारतीय अंक प्रणाली वहां प्रचलित हुई। मौ॰ सैयद सुलेमान नदवी भी इसकी पुष्टि करते हुए लिखते हैं कि ''मेरी समझ से ठीक बात यह है कि जिस ''सिद्धांत'' का अनुवाद हुआ था, उसी के तेरहवें और चौबीसवें प्रकरण में गणित और अंकों का उल्लेख है और उसी से यह ढंग अरबों में चला था।''

अरबी में पहले अक्षरों में संख्याएं लिखते थे। फिर यहूदियों और यूनानियों की भांति ''अ, ब, ज, द'' के ढंग से (अर्थात् अ = 1, ब = 1, ज = 3 और द = 4) संख्याएं लिखने लगे। अब भी अरबी ज्योतिष में संक्षेप और शुद्ध लिखने के लिए यही पद्धति प्रचलित है। इसी आधार पर ''बिस्मिल्लाउर्रहमान रहीम'' लिखने के लिए केवल 786 ही लिखना पर्याप्त माना जाता है। रोमन सभ्यता में रोमन लिपि के अक्षरों द्वारा संख्याएं बताई जाती थीं। आज भी रोमन अंक उसी प्रकार प्रचलित हैं, जैसे I, II, III, IV, V आदि। इसमें यदि 313 लिखना हो तो तीन बार सौ का चिह्न और फिर दस का तथा तीन बार एक-एक का चिह्न बनाना पड़ेगा, जैसे CCCXIII। यह पद्धति जटिल थी। भारतीयों ने 1 से 9 तक प्रत्येक अंक के लिए चिह्न

निश्चित कर लिए। ''शून्य'' का आविष्कार भी सर्वप्रथम भारत में हुआ, जो गणित शास्त्र में एक महान उपलब्धि मानी जाती है। संख्याओं को अंकों द्वारा अभिव्यक्त करने, शून्य लगाकर इनका दस गुणा मान बढ़ाने तथा इकाई, दहाई आदि स्थानों के मान निर्धारित करने की गणित शास्त्रीय पद्धति सबसे पहले भारत में निकली थी, जो अन्य देशों में जाकर अन्तर्राष्ट्रीय रूप में प्रचलित हुई थी। यह एक माना हुआ ऐतिहासिक तथ्य है। इसे ही दशमलव प्रणाली कहा जाता है।

अरब में भारतीय अंकों के सबसे पहले प्रयोग का श्रेय मुहम्मद बिन मूसा ख़्वारिज्मी (780-840 ई॰) को जाता है। उसी ने भारतीय हिसाब को अरबी सांचे में ढाला। यही रूप अन्दलुस के मार्ग से यूरोप पहुंचा। यूरोप में गणित की एक शाखा को Algorithm, Algoritems, Algorism कहते हैं। ये सब इसी अलख़्वारिज्मी के बिगड़े हुए रूप हैं। अलख़्वारिज्मी के अरबी ग्रंथ का लगभग 1120 ई॰ में एडेलॉर्ड ऑफ बाथ ने लैटिन में अनुवाद किया, जिसका नाम है 'Liber Algorismi De Numero Indorum'। इस पुस्तक ने यूरोप और इंग्लैंड में इन अंकों को फैलाया। इन्हीं भारतीय अंकों को ''हिसाबुल गुब्बार'' भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि हिन्दू लोग बच्चों को जमीन या धूल पर लिखना ''धूलि कर्म'' सिखाते थे। इसीलिए इन्हें ''हिसाबुल गुब्बार'' कहा जाने लगा। यूरोप के अंक इन्हीं गुब्बारी अंकों से निकले हैं।

इससे स्पष्ट है कि ये अंक अरब के नहीं बाहर के हैं। इसका एक कारण यह भी है कि अरबी लिपि की लेखन प्रणाली के ठीक विपरीत ये अंक बाएं से दाएं लिखे जाते हैं।

अलख़्वारिज्मी के बाद मुसलमानों में भारतीय गणित का प्रचार करने वाला दूसरा व्यक्ति अली बिन अहमद नसवी (980-1040 ई॰) है, जिसने ''अलमुकन्नअ फिल हिसाबिल हिंदी'' नामक पुस्तक लिखी। कहा जाता है कि प्रसिद्ध हकीम और दार्शनिक बू-अली सैना (1015 ई॰) ने बचपन में यह भारतीय हिसाब एक कुजंड़े से सीखा था। इससे पता चलता है कि भारतीय गणित सर्व-साधारण में चल पड़ा था। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के खण्ड 19 में दिए गए वर्णन से पता चलता है कि हिसाब रखने का यह ढंग भारत से चलकर अरब के रास्ते किस प्रकार यूरोप पहुंचा।

यूरोप में इस प्रणाली के विलम्ब से पहुंचने पर पश्चाताप करते हुए ''प्रिंस ऑफ मैथेमेटिक्स'' कहे जाने वाले कार्ल फ्रेड्रिक गौस ने कहा था कि ईसा-पूर्व की तीसरी शती में आर्शीमिदस भारतीय अंक प्रणाली का पूर्वानुमान नहीं कर सका, नहीं तो विज्ञान कितना विकसित हो गया होता।

भारत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी में, जिसमें भारत की प्रायः सभी भाषाओं (उर्दू को छोड़कर) की लिपियां निकली हैं, अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग मिलता है। श्री कलानाथ शास्त्री के अनुसार ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के नानाघाट के शिलालेख में 2, 4, 6, 7 और 9 अन्तर्राष्ट्रीय अंक ही प्रयुक्त पाए गए हैं। नासिक की गुफाओं में ईसा की पहली और दूसरी शती के शिलालेखों में 2, 3, 4, 5, 6, 7 और 9 के अन्तर्राष्ट्रीय अंक मिले हैं। इसी प्रकार 250 ई॰पू॰ के अशोक के शिलालेखों में भी 1, 4 और 6 अंक अन्तर्राष्ट्रीय रूप में प्रयुक्त हैं। कालान्तर में भारतीय भाषाओं के अंकों में परिवर्तन होता गया। देवनागरी के अंक भी प्राचीन ब्राह्मी लिपि के अंकों का ही विकसित रूप हैं।

यहां पर यह बताना भी अप्रसांगिक न होगा कि हिन्द महासागर में स्थित मालदीव गणराज्य की भाषा ''दिवेही'' में तो संख्याओं को बोलने का ढंग भी हिंदी से मिलता जुलता है। दोनों देशों की संख्याओं के उच्चारण में अद्‌भुत साम्य है।

इन तथ्यों के आधार पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अन्तर्राष्ट्रीय रूप में प्रचलित वर्तमान अंक, भारतीय अंकों का ही रूप हैं, जो भारत से ही विदेशों में गए थे और अब जिन्हें भारतीय संविधान में राजभाषा हिंदी के लिए स्वीकार किया गया है।

संदर्भ

1. तारीखुल् अतविया खंड 2, पृ॰ 35 (मिस्र)

2. The ancient Egyptians, Greek, Roman and Babylonian all evolved number system, although none had a zero which was introduced from India by way of Arab mathematicians in about the 6th century A.D. Page-818 Western's New world Encyclopedia, 1992.

3. अरब और भारत के संबंध : मौ॰ सय्यद सुलेमान नदवी पृ॰ 109

4. तबक ातल उम्मा साइद अन्दलसी, पृ॰ 14 (बेरूत)

5. Al Beruni reported that in Hindus frequently performed computations in the sand and his statement suggests a possible origin - Collier's Encyclopedia Vol. 8, Page - 13.

6. Thus use of zero and the use of Western Arabic (Gober), numerals are spread throughout Europe in the 10th century principally by the effect of Gerbert, who later became pope Sylwester II. -the new Encyclopedia Britannica, Vol. 16, Page-

l

xty

F जियाराम शुक्ल 'विकल' साकेती

कोई हो गया है मेरा मेरी कल्पना से पहले,
मेरा देवता मगन है मेरी वन्दना से पहले।

मैं प्रकृति में खो गया हूं यूं ही दोष है पुरुष का,
कोई कामिनी नहीं थी मेरी कामना से पहले।

कहीं शीश क्या झुकाऊं कहीं हाथ क्या पसारूं,
मुझे भीख मिल गई है मेरी याचना से पहले।

मुझे मिल गया सभी कुछ यही साध आखिरी है,
मेरी साध हो न पूरी मेरी साधना से पहले।

तुम्हें किस तरह बताऊं के मैं किसलिए विकल हूं।
मेरे ढल चुके हैं आंसू मेरी वंदना से पहले।।

l

uiky e[¯gnh dh lo/kkfud ekU;rk dh tkjnkj ekx

F राजेश्वर नेपाली, नेपाल

हमें नेपाल से श्री राजेश्वर नेपाली द्वारा यह प्रपत्र 'नेपाल में उठ रही हिंदी की मांग' को लेकर प्राप्त हुआ, जिसमें कई गतिविधियों का उल्लेख है। हम यह प्रपत्र बिना सम्पादित किए हुए ज्यों का त्यों प्रकाशित कर रहे हैं ताकि उनके द्वारा किए जा रहे प्रयासों की सम्पूर्ण जानकारी हमारे पाठकों तक पहुंच सके। **सम्पादक**

बहुजातीय एवं बहुभाषीय नेपाल के बहुसंख्यक लोगों की सम्पर्क भाषा हिन्दी की संवैधानिक मान्यता के लिए जनकपुर बौद्धिक समाज डेढ़ दशक से प्रयत्नशील है। सन् 1990 के जन आन्दोलन के परिणामस्वरूप पुनर्स्थापित प्रजातान्त्रिक नेपाल के संविधान निर्माण के समय सन् 1990 की जुलाई 7 को सम्पूर्ण तराई में बोली जानी वाली हिन्दी को द्वितीय राष्ट्र भाषा घोषित करने की मांग के साथ ही विगत एक दशक में नेपाल सात राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलनों का आयोजन कर नेपाल के 14 हिन्दी साहित्यकारों को सम्मानित करने के साथ ही यहां सम्पूर्ण नेपाल को जोड़ने वाली सम्पर्क भाषा हिन्दी की संवैधानिक मान्यता की मांग की जाती रही है।

इस क्रम में सर्वप्रथम जनकपुर धाम में 1996 की मार्च 9 और 10 को प्रथम, 1998 मार्च 10 और 11 को वीरगंज में द्वितीय, 2000 की मार्च 24 और 25 को भैरहवा में तृतीय, 2001 की मार्च 25 और 26 को विराट नगर में पंचम, सन् 2003 की जून 28 और 29 को जनकपुर धाम में षष्टम तथा इसी वर्ष सन् 2004 की अक्टूबर 12 और 13 को जलेश्वर, महोत्तरी में सप्तम नेपाल राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन आयोजित किया गया।

जनकपुर बौद्धिक समाज द्वारा महोत्तरी जिला सभा भवन में आयोजित सप्तम नेपाल राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन के उद्घाटन समारोह का सम्बोधन करते हुए राष्ट्रीय सभा के सांसद राम जीवन सिंह ने कहा, कि सम्पूर्ण मधेशी की पहिचान है हिन्दी जिसे तानाशाही पंचायत में मिटाया नहीं जा सका और सरकारी अवरोध के बाद भी हिन्दी जीवित रही तो प्रजातन्त्र में हिन्दी को कौन समाप्त कर सकता है। हिन्दी नेपाल में प्रजातन्त्र की भाषा है, जो 2007 और 2046 (संवत्) साल के जन-आन्दोलन में देखा जा चुका है।

सांसद श्री सिंह ने आगे कहा, प्रजातन्त्र में हरेक भाषा और संस्कृति का सरंक्षण होता है, देश में प्रजातंत्र रहा तो कल हिन्दी सबों को स्वीकार करनी ही होगी और इसे संवैधानिक मान्यता प्रदान करनी ही पड़ेगी।

उन्होंने आगे कहा, देश में व्याप्त द्वन्द्व को समाप्त कर शान्ति स्थापना के लिए संविधान सभा का गठन आवश्यक है।

स्नातकोत्तर कक्षाओं का संचालन हो

त्रिभुवन विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग की प्राध्यापिका एवं प्रमुख अतिथि डॉ॰ आशा सिन्हा ने कहा, नेपाल में हिन्दी की दीर्घ परंपरा है, जिसे कोई समाप्त नहीं कर सकता है। हिन्दी के प्रति द्वेष नहीं रखकर रा॰ रा॰ ब॰ कैम्पस में जहां आधे दर्जन विषयों में स्नाकोत्तर कक्षाएं संचालित हैं, हिन्दी की भी स्नाकोत्तर कक्षाएं संचालित की जानी चाहिए, जिससे छात्र लाभान्वित होंगे।

प्रजातन्त्र की भाषा

नेपाली कांग्रेस के बलराम शर्मा ने कहा, हिन्दी हमारी पहचान है और प्रजातन्त्र की भाषा है। इसे कोई खत्म नहीं कर सकता है।

जनता की भाषा

नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी ए॰ मा॰ ले॰ के नेता गणेश नेपाली ने कहा, हिन्दी लाखों लोगों की भाषा है, जिसे कोई षड्यन्त्र खत्म नहीं कर सकता है। सत्ताधारियों के खेल में जो भी हो, यह सम्पूर्ण नेपाल को जोड़ने वाली लोकप्रिय भाषा है, जो अब शीघ्र ही सम्पूर्ण सार्क की भाषा होने वाली है। अतः इसके प्रति द्वेष नहीं रखकर सत्य को सबों को स्वीकार कर जन-जन की भाषा हिन्दी को संवैधानिक मान्यता प्रदान कर इसके साहित्य को सरंक्षित किया जाना आवश्यक है।

संवैधानिक मान्यता मिले

नेपाल सद्भावना पार्टी के केदारनाथ पाठक ने कहा, हिन्दी सम्पूर्ण देश को जोड़ती है। इसके प्रति द्वेष नहीं रखकर इसे संवैधानिक मान्यता प्रदान करनी चाहिए।

समुचित विकास हो

नेपाल सद्भावना पार्टी के नेता तथा अरविन्द साधना कुटीर के संचालक रामचन्द्र मिश्र ने कहा, तीस वर्षो की पंचायती तानाशाही में हिन्दी को खत्म नहीं किया जा सका तो अब कैसे समाप्त किया जा सकता है। इसको संवैधानिक मान्यता प्रदान कर इसका समुचित विकास किया जाना चाहिए।

सन्तों द्वारा संरक्षित

वरिष्ठ अधिवक्ता युगल किशोर लाल ने कहा हिन्दी नेपाल की प्राचीनतम भाषा है। कई शताब्दियों तक सन्तों द्वारा संरक्षित हिन्दी जन-जन की भाषा है। इसे संवैधानिक मान्यता प्रदान कर इसका समुचित विकास किया जाना आवश्यक है।

मिलकर बढ़ें

सम्मानित साहित्यकार गोपाल अस्क ने कहा कि हिन्दी के प्रति द्वेष नहीं रखकर हमें इसके विकास के लिए मिलकर काम करना चाहिए।

हिन्दी एक दूसरे को जोड़ती है

नेपाल हिन्दी साहित्य परिषद वीरंगज के महासचिव प्रा॰ भाग्यनाथ प्रसाद गुप्ता ने कहा, हिन्दी हम सबों की भाषा है और एक दूसरे को जोड़ती है। इसे द्वितीय राष्ट्रभाषा घोषित कर हिन्दी साहित्यकारों को भी सम्मानित किया जाना चाहिए।

महत्वपूर्ण काम

नेपाल हिन्दी प्रतिष्ठान के महासचिव रामस्वार्थ सिंह ने कहा, प्रजातन्त्र में हरेक भाषा और संस्कृति का विकास हो, इसी भावना से जनकपुर बौद्धिक समाज द्वारा 2052 साल से आज तक सात राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन आयोजित कर हिन्दी साहित्यकारों को सम्मानित करने का महत्वपूर्ण काम किया गया है। उसे आगे बढ़ावें।

नेपाल मैथिली साहित्य परिषद के महासचिव रामभरत शाह ने सम्मेलन की सफलता के लिए शुभकामना व्यक्त कीं तो बिहार राष्ट्रभाषा परिषद की डॉ॰ मिथिलेश कुमारी मिश्र का शुभकामना सन्देश भी पढ़कर सुनाया गया।

हरेक भाषा साहित्य का उत्थान हो

प्रमुख जिलाधिकारी विमल प्रसाद ढकाल ने कहा, साहित्य समाज का पथ प्रदर्शन करता है। इसलिए प्रजातन्त्र में हरेक भाषा और साहित्य का विकास और उत्थान हो, हमारी शुभाकामनाएं हैं।

शुभकामना सन्देश

सम्मेलन के उद्‌घाटन समारोह में भारतीय राजदूत शिवशंकर मुखर्जी का शुभकामना सन्देश संस्कृति अटैची डॉ॰ श्री प्रकाश शुक्ल ने पढ़कर सुनाया। सन्देश में कहा गया है नेपाल भारत के अटूट मैत्री सम्बन्ध को और अधिक सुदृढ़ करने में यह सम्मेलन पूरक होगा।

हिन्दी की सुदीर्घ परंपरा

जनकपुर बौद्धिक समाज के अध्यक्ष राजेश्वर नेपाली ने उद्‌घाटन समारोह की अध्यक्षता करते हुए कहा, नेपाल में हिन्दी की सुदीर्घ परंपरा है। हिन्दी के आदिकवि कुक्करीपा का जन्म सन् 840 में तौलिहवा में हुआ था। सवा छः सौ वर्ष पूर्व दांग के राजा रतन सने ने रतन बोध की रचना की, जो नेपाल का प्राचीनतम ग्रंथ है। उनके उनके बाद साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व आधुनिक जनकपुर धाम के उत्खननकर्त्ता तथा वर्तमान जानकी मन्दिर के संस्थापक महात्मा सूर किशोर दास हुए, जिनकी कृति मिथिला विकास में पौराणिक जनकपुर धाम की गरिमा और महिमा वर्णित है। उन्हें 1750 साल में मकवानपुर नरेश हेमकर्ण सेन द्वारा राम जानकी की पूजा अर्चना के लिए 1400 बीघे भूमि प्रदान की गई थी।

महात्मा सूर किशोर दास के बाद उनके शिष्य प्रयाग दास और फिर सीतायन के रचनाकार रामप्रिया शरण हुए। फिर सन्त परंपरा में जनकराज किशोरी शरण रसिक अलि हुए, जो 25 पुस्तकों की रचना कर सौ वर्ष पूर्व 1961 साल (सन् 1905) में परलोक सिधारे थे। उनके बाद महन्त गोकुल गिरि, पं॰ अवध किशोरी दास, पं॰ उर्मिलाकान्त शरण, महन्त अवध कुमार दास आदि अनेक सन्त हुए, जिन्होंने हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया और वही परंपरा आज भी जीवित है।

उन्होंने आगे कहा, नेपाल में हिन्दी जब अनेक प्रशासनिक कुचक्रों के बाद भी पंचायतकालीन तानाशाही में मिटाई नहीं जा सकी तो फिर आज उसे मिटाया जाना कैसे संभव है। हिन्दी तोड़ती नहीं, लोगों को जोड़ती है, इसलिए इसके विकास के लिए हिन्दी प्रकाशन की व्यवस्था आवश्यक है। क्योंकि आज भी सैकड़ों हिन्दी पुस्तकों की पाण्डुलिपियां बिखरी पड़ी हैं। उनके प्रकाशन के लिए एक कोष का निर्माण अत्यावश्यक है।

उन्होंने कहा, सम्पूर्ण तराई और पहाड़ को जोड़ने वाली सम्पर्क भाषा हिन्दी को नेपाल की द्वितीय राष्ट्रभाषा घोषित कर माध्यमिक स्तर से ही इसके पठन-पाठन की व्यवस्था होनी चाहिए और जनकपुर धाम में इसकी स्नातकोत्तर कक्षाएं संचालित की जानी चाहिएं। क्योंकि राजधानी काठमाण्डू में मात्र स्नातकोत्तर कक्षाएं संचालित होने से तराई के छात्रों को बड़ी असुविधा होती है और वे पढ़ नहीं पाते हैं और दूसरी ओर छात्रों की कमी भी होती है।

हिन्दी को द्वितीय राष्ट्रभाषा घोषित करने की मांग

जनकपुर बौद्धिक समाज द्वारा आयोजित सप्तम नेपाल राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन के दूसरे दिन 2061 आश्विन 27 गते (13 अक्टूबर, 2004 ई॰) की संध्या जनकपुर बौद्धिक समाज के अध्यक्ष राजेश्वर नेपाली की अध्यक्षता में एक बैठक हुई। घोषणा सभा द्वारा पारित सर्वसम्मत प्रस्ताव निम्न अनुसार हैं

1. सम्पूर्ण देश को जोड़ने वाली सम्पर्क भाषा हिन्दी को द्वितीय राष्ट्रभाषा घोषित किया जाए।
2. हिन्दी को पुनः नेपाल के तराई क्षेत्र सम्पूर्ण मधेश में शिक्षा का माध्यम बनाया जाए।
3. हमारे देश के हिन्दी साहित्यकार एवं विद्वानों को नेपाल राजकीय प्रज्ञा प्रतिष्ठान में समुचित स्थान दिया जाए।
4. हिन्दी भाषा एवं साहित्य की उचित प्रतिष्ठा के लिए राजकीय स्तर पर नेपाल हिन्दी प्रतिष्ठान की अविलम्ब स्थापना हो।
5. नेपाल में हिन्दी साहित्य की सवा छः सौ वर्षों की दीर्घ परंपरा को संरक्षित करने के लिए सन्त साहित्य का वर्तमान हिन्दी साहित्यकारों से पूर्ण सर्वेक्षण कराकर एक अधिकृत सूची तैयार कर नेपाल के हिन्दी साहित्यकारों की परिचयात्मक पुस्तक प्रकाशित की जाए।
6. रेडियो नेपाल से दैनिक सुबह, अपराह्न और सन्ध्याकालीन समाचार विचार प्रकाशन के साथ ही नेपाल टेलीविजन से भी

शेष पृष्ठ 33 पर...

ru ynu e] eu Hkkjr e---

F डॉ. कृष्ण कुमार, यू. के.

‘गीतांजलि बहुभाषीय समुदाय बर्मिंघम’ के न्यासी डॉ॰ कृष्ण कुमार का जन्म 14 फरवरी, 1940 बहराइच, उत्तर प्रदेश में हुआ था। आप 1972 से यू॰के॰ प्रवास करते हुए भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए अपने सहयोगियों के साथ गंभीरता से कार्यरत रहे। पेशे से इंजीनियर विश्व के विभिन्न विश्वविद्यालयों में कार्यरत रहे हैं।

डॉ॰ कृष्ण कुमार एक चिंतक हैं, कवि हैं। आपके दो काव्य संग्रह ‘अभी मैं मरा नहीं’ तथा ‘चिंतन बना लेखनी मेरी’ प्रकाश में आ चुके हैं।

आप 1999 में ‘छठे विश्व हिन्दी सम्मेलन’ के कार्यकारिणी अध्यक्ष रहे। आप प्रतिवर्ष बर्मिंघम में एक अंतर्राष्ट्रीय बहुभाषीय कवि सम्मेलन ‘यू॰के॰ हिन्दी समिति’ के साथ आयोजित करते हैं। डॉ॰ कुमार यू॰के॰ के नवोदित कवियों की प्रेरणा हैं। आप एक अच्छे अनुवादक और यू॰के॰ से प्रकाशित होने वाली ‘पुरवाई’ पत्रिका की सम्पादन समिति के सदस्य हैं।

संपादक

श्रीराम जी के 14 वर्ष वनवास में समाप्त होने पर जब वह अयोध्या लौटे थे, तब उनके स्वागत में दीप जलाए गए थे, किन्तु मेरे साथ बिल्कुल उसका विपरीत ही हुआ था। अनेकों स्वप्नों को संजोए दीवाली के दीपों को जलाकर मैंने 18 अक्टूबर, 1971 को स्वेच्छा से देश छोड़ना स्वीकार किया था। राम तो वापस आए थे, किन्तु मेरा तन अब तक विदेश की गलियों में भटक रहा है। अभी और कितने वर्ष लगाने पड़ेंगे देश से बाहर, केवल राम ही जानें। मैंने सोचा था कि बर्तानियां में हिन्दू-मुस्लिम आदि जाति के झगड़े समाप्त हो जाएंगे, उत्तर-दक्षिण का भेद भी न रहेगा और सब भारतवंशी की संज्ञा से ही जाने जाएंगे। किन्तु यह सब मेरा भ्रम था जो शीघ्र ही टुकड़े-टुकड़े हो गया था और आज लगभग 33 वर्षों के उपरान्त भी इस सामाजिक समीकरण में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। पिछले दशक के कुछ प्रयासों के फलस्वरूप कुछ आशा की किरणें क्षितिज पर नजर आने लगी हैं।

रामचरित मानस के प्रति लगाव एवं ईश्वर में दृढ़ विश्वास मुझको अपने परिवार से विरासत में मिला था जिसने आगे चलकर मेरी जिन्दगी का आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक मार्ग निर्धारित किया। भारत की परम्परा एवं संस्कृति में पूर्ण आस्थावान को पहला आघात प्रारम्भ में ही तब लगा था जब मैंने नौजवान युवक एवं युवतियों को खुली सड़क पर एक अजीब-सी भावभंगिमा के साथ आलिंगन करते पाया था। धीरे-धीरे मेरे मस्तिष्क को इन सब दृश्यों को स्वीकार करना ही पड़ा। दोनों देशों की सांस्कृतिक परम्परा में इतना अन्तर है कि मैं अब तक अनेकों बातों को स्वीकार करने में अपने आपको पूर्णतया अक्षम पाता हूं।

आई॰आई॰टी॰ मद्रास से इलैक्ट्रोनिक्स में डिग्री होने के बावजूद भी मुझको पग-पग पर अपनी क्षमता एवं ज्ञान सिद्ध करना पड़ा था। अच्छी से अच्छी कम्पनियां मेरी डिग्री को स्वीकार करने से नकारती रहीं। यह सब केवल इसलिये हो रहा था कि मेरा देश बर्तानियां की अपेक्षा कम समृद्धिशाली था। यही स्थिति लगभग सभी पढ़े-लिखे, देश के भाई-बहनों की रही है। ऐसे कटु अनुभवों के बाद भी जो वहां आता है, वहीं का होकर रह जाता है। ऐसा क्यों होता है ? इस विषय पर सबके मत भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। मेरे विचार से हम बाह्य सुख एवं आनन्द तथा भौतिक समृद्धि को ही अच्छा जीवन बड़ी ही सहजता से स्वीकार लेते हैं। निःसंदेह भारत की अपेक्षा भौतिक सुख-सुविधाएं लगभग सबको मिल जाती हैं जो कि देश में केवल चुनिन्दा अमीर लोगों को ही मिल पाती हैं। किन्तु शीघ्र ही यह नशा लगभग उतर जाता है और चिन्तनशील व्यक्ति अध्यात्म की ओर भागता है। पर दुःखद सत्य तो यह है कि तब तक बहुत देर, बहुधा हो जाती है और लगभग सबके साथ यह कहावत चरितार्थ होने लगती है कि ‘‘धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का।’’

सौभाग्यवश मेरी मनोदशा को नियंत्रित रखने के लिये मेरा ईश्वर और साहित्य प्रेम सदैव मुझसे जुड़ा रहा। प्रारम्भ से ही मेरी कलम कविता की ओर बढ़ी है जिसकी शुरुआत 1954-55 में हुई थी। इसके पूर्व छिट-पुट लेख एवं कहानियां भी लिखीं और प्रकाशित हुई थीं। वह कसक जो मैंने 1971 में यू॰के॰ पहुंचने पर महसूस की थी, बराबर सताती रही। इस सम्बन्ध में भाषा एवं संस्कृति के माध्यम से भारतवंशियों को जोड़ने के उद्देश्य से 1974-75 में तत्कालीन उप-उच्चायुक्त लन्दन, श्री नटवर सिंह जी, को एक पत्र भी लिखा था। किन्तु काल ही सबसे बड़ा निर्णायक होता है और ऐसा ही मेरी इस योजना के साथ हुआ और वह आगे न बढ़ पाई। मैं भी अपनी पारिवारिक एवं सामाजिक लड़ाई में लग गया और यह भूल ही गया कि मेरे अन्दर ही अन्दर एक घाव पल रहा है। कुछ अन्य साहित्यिक एवं सामाजिक मित्रों के साथ मिलकर तुलसी कृत रामचरित मानस के माध्यम से घर-घर जाकर भारतीयता का प्रचार करना 1975 में ही प्रारम्भ कर दिया था। यहां तक कि एक समय ऐसा आ गया था कि लोगों ने हम लोगों को व्यवसायिक रामायणी सोचना प्रारम्भ कर दक्षिणा तक देनी चाही थी। उनको यह नहीं मालूम था कि हम लोग यह सब क्यों कर रहे थे। लोगों के स्थानान्तरण के कारण टोली में बिखराव आ गया और कार्य लगभग तीन वर्ष बाद बन्द-सा हो गया।

पुराने घाव ने अपना सिर उठाया और मुंह खोला। मेरा स्वास्थ्य बिगड़ा और वह इतना बिगड़ा कि 1994-95 में मैं मौत की चौखट तक आ पहुंचा था। 10 फरवरी, 1995 के आस-पास मेरा मौत से साक्षात्कार हुआ, ऐसी मेरी मान्यता है, और मुझको याद दिलाते हुए आदेश दिया गया एक बहुभाषीय संस्थान की स्थापना के लिये। पुरानी बातें जिनको मैं भूल चुका था, याद आईं और मैंने इस आदेश को स्वीकार करते हुए तत्काल संकल्प लिया कि यह करना ही होगा। डॉक्टरों की सोच के विपरीत मेरे स्वास्थ्य में सुधार आता गया और 14 फरवरी, 1995 को होने वाला, एक खतरनाक ऑपरेशन टल गया। वास्तव में मेरी गर्दन की तीन डिस्क लगभग समाप्त हो चुकी थीं और गर्दन बिल्कुल झुक भी गई थी। यह गर्दन का ऑपरेशन था जिसमें सफलता कम ही मिलती है, ऐसा डॉक्टरों एवं शोधकर्ताओं का मानना है। तत्कालीन उच्चायुक्त लंदन डॉ॰ लक्ष्मीमल्ल सिंघवी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कमला सिंघवी की सहायता एवं प्रोत्साहन से ईश्वरादेश सम्पन्न हुआ जो आगे चलकर ''गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय'' के नाम से जाना गया। इस समुदाय का अलौकिक एवं सार्वजनिक उद्घाटन पद्मश्री शिव मंगल सिंह, सुमन जी के कर-कमलों से 20 अक्टूबर, 1995 को सम्पन्न हुआ था। वास्तव में यह कार्य सिंघवी दम्पति के हाथों होना निश्चित हुआ था, किन्तु कुछ कारणोंवश वह नहीं पहुंच पाए थे जिसका दुःख उनको बहुत समय तक परेशान करता रहा था, ऐसा मैं जानता हूं।

समुदाय की स्थापना के पहले अनेकों बाधाएं आई थीं, किन्तु ''जा पर कृपा राम कै होई'' वाली बात मेरी साथ थी; अतः वह सब स्वयं दूर होती गईं या यों कहें कि दूर कर दी गईं। इस समुदाय में भारत की आठ भाषाओं का प्रतिनिधित्व है और पिछले दस वर्षों में यह सिलसिला चलता आ रहा है।

सन् 2005 में यह समुदाय अपने दस वर्ष की यात्रा तय कर लेगा। समुदाय के बारे में विस्तार से लिखने एवं बताने का न तो स्थान है, न समय है जो कि 'प्रवासी संसार' के पाठकों को शीघ्र ही उपलब्ध किया जाएगा, जिसमें पढ़कर यह भ्रम टूट जाता है कि बहुभाषीय समुदाय केवल एक कल्पना मात्र होता है। पिछले दस वर्षों में इस समुदाय की अनेकों उपलब्धियां रही हैं जिनमें मुख्य है इसके उद्देश्यों की आंशिक पूर्ति। समुदाय का उद्देश्य है ''भाषा, संस्कृति एवं धर्म के माध्यम से भारतवंशियों एवं मेजबान देश के हर आयु के लोगों के बीच सद्भावना एवं सम्बद्धता का वातावरण प्रदान करना।'' समुदाय के सभी सदस्यों एवं उन सबको जिन्होंने इस यज्ञ में अपनी आहुति डाली है तथा इस मशाल को जलाए रखा है। मैं, ईश्वर को साक्षी मानकर उन सबको नमन करता हूं।

l

g b'oj !

F राज हीरामन

हे ईश्वर !
मुझे अमर होने का
तुम वरदान नहीं देना !
मैं तुमसे सिर्फ
एक ऐसा जीवन मांग रहा हूं
कि ऐसी मृत्यु मिले
कि मैं खुद चलकर
श्मशान तक जा सकूं !
क्योंकि मेरी अर्थी को
कांधा देने वाला, अब
मुझे कोई दिखाई नहीं दे रहा !

l

Li'k

F राकेश पाण्डेय

मां
तुम्हारा
प्रथम स्पर्श
इतना उष्ण था
कि
पाषाण पिघल जाए।

मां
तुम्हारा
अंतिम स्पर्श
इतना शीतल था
कि
पाषाण हिम बन जाए।

l

(मां की मृत्यु पर : 5/11/2004)

अंर्तमन से

;g bXy.M g Hkkb th

F प्राण शर्मा, यू. के.

> बहुयामी व्यक्तित्व के स्वामी श्री प्राण शर्मा 13 जून, 1937 में वजीराबाद (वर्तमान पाकिस्तान) में जन्मे। आस-पास साहित्यिक वातावरणन होने के बावजूद भी आपको बचपन से ही साहित्य में रुचि थी। विभाजन के दौरान आप अपने परिवार के साथ दिल्ली आ गए और फिर वहीं आपकी बाकी की शिक्षा-दीक्षा हुई। सन् 1955 से प्राण शर्मा जी निरंतर अपने गंभीर लेखन के लिए देश-विदेश में जाने जाते हैं।
>
> आज ब्रिटेन के लब्धप्रतिष्ठित वरिष्ठ ग ज लकार श्री प्राण शर्मा पिछले चार दशक से लंदन प्रवास कर रहे हैं। आपने आरंभ में कहानियां लिखीं, किन्तु बाद में कविता और ग ज ल की ओर रुझान हुआ तो आपने ग ज ल लेखन में परिश्रम कर उर्दू शायरों के बीच अपना विशेष स्थान बनाया। **संपादक**

यह इंग्लैण्ड है भाई जी

गोपीनाथ से लंदन जाने वाली कोच छूट गयी थी। एक अन्य कोच ड्राईवर ने बड़ी शिष्टता से उसको अगली कोच का समय बताया। गोपीनाथ को लगा कि उसने उस ड्राईवर को पहले भी कहीं देखा था। उसने भेजे पर जोर दिया। याद आते ही उसने धीरज से पूछा ''आपने भारत में पंजाब रोडवेज में भी काम किया था ?''

''जी हां, मैं पंजाब रोडवेज में बस कंडक्टर था।''

''क्या, आपको याद है कि पांच साल पहले किसी यात्री से दिल्ली जाने वाली बस छूट गयी थी। उसने आपसे अगली बस के टाइम के बारे में पूछा था तो आपने उसको ऊपर से नीचे तक देखकर बड़ी बेरुखी से कहा था पढ़ा-लिखा दिखायी देता है, वो सामने बोर्ड पर बसों का टाइम लिखा है, जाकर पढ़ लो।''

बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले

''तुम यहां ?'' चालीस साल से इंग्लैण्ड में रह रहे धनराज ने हैरान होकर अपने बेटे दीपक से पूछा।

''डैड, मैं वापस आना चाहता हूं आपके पास।'' दीपक ने झुककर कहा।

''नहीं, अब ऐसा मुमकिन नहीं है। तेरी मां के मरने के बाद मैं अलग-थलग पड़ गया था। पांच सालों तक तू कहां था ? मैं अच्छी तरह जानता हूं कि अब तू यहां क्यों और किसलिए आया है ? सच्चाई यह है कि मेरी पेंशन के साथ मुझको मिली बड़ी रकम तुझे यहां खींच लाई है। जब तुझे मेरी जरूरत नहीं थी तो मुझे तेरी जरूरत क्यों हो ? अब मैं अकेला रहने का आदी हो गया हूं। मुझे पुलिस की सहायता लेनी पड़ेगी, अगर तू...।'' दृढ़ निश्चयी धनराज अपनी बात को पूरी भी नहीं कर पाया था कि बेटा वहां से खिसक गया।

प्रवासी की वापसी

दादी की बड़ी अभिलाषा थी कि उसका इकलौता पोता हर्ष अंग्रेजी का अच्छा ज्ञाता बने और पढ़े-लिखे आधुनिक लोगों की तरह जब वह फर्राटेदार अंग्रेजी में बोले तो अड़ोस-पड़ोस वाले दांतों तले उंगलियां दबा लें। पढ़ने के लिए हर्ष को बचपन में ही बर्तानियां भेज दिया गया था। घर की सारी पूंजी उसकी पढ़ाई पर खर्च हो गयी थी। शिक्षा के बाद लंदन की एक फर्म ने अच्छी तनख्वाह पर उसे नौकरी दे दी थी। उसकी योग्यता ही कुछ ऐसी थी। 'परमानेंट स्टे' भी उसे मिल गया था। दादी को पता चला तो वह लाल-पीली हो गयी। क्या इसी दिन के लिए उसने अपने पोते पर अपनी सारी जमापूंजी खर्च की थी ? जरूर वह किसी गोरी-वोरी के मायाजाल में फंस गया है।

दादी ने रो-धोकर पोते को भारत में वापस बुलवा लिया वह उसके जीवन का हर्ष जो था, भले ही कई सालों तक उसकी नजरों से दूर रहा था। मुहल्ले भर में शुद्ध घी के लड्डू बांटे गये, आतिशबाजी की गयी। दादी की सारी खुशी पर पानी फिर गया, जब कुछ दिनों के बाद भी अंग्रेजी सभ्यता की चमक-दमक में पला उसका पोता हिन्दी में उससे बात करने में दिक्कत महसूस कर रहा था।

जवाब हो तो ऐसा

इंग्लैण्ड, प्रवासियों के लिए मीठा कारावास है। कल भी था और आज भी है। रोज किसी न किसी शहर में नस्ली हमला होता ही है।

इंग्लैण्ड में हमारे शुरू के दिन थे। मेरी पत्नी रोज ही मुझ पर बरसती ''आपने किस देश में मुझे बुलवा लिया है। मैं तो भारत में ही अच्छी थी। यहां रोज-रोज के हमले मुझसे बर्दाश्त नहीं होते। ऐसा करें, आप मुझे भारत भेज दें। आप भले ही यहां रहें। अब मैं यहां और नहीं टिक सकती।'' सोचा जाए तो एक औरत के नाते उसका मुझ पर बरसना जायज ही था। दूसरे मुहल्लों के कुछ शरारती अंग्रेज लड़कों ने हमारा जीना दूभर कर दिया था। शाम को अंधेरा होते ही कुछ लड़के टोली बनाकर आते और हमारे घर की खिड़कियों पर पत्थर बरसाकर भाग जाते थे। वे किधर से आते थे और किधर को भाग जाते थे, कुछ पता नहीं चलता था। पुलिस स्टेशन में रिपोर्ट लिखवायी, लेकिन बात न बनी। हमारे चेहरों का रंग ही कुछ ऐसा था।

एक दिन मैंने अपने पड़ोसी की सहायता ली। शाम हुई। हम छिपकर लड़कों की ताक में बैठ गये। तीन लड़के छोटी गली से प्रकट हुए। वे पत्थर फेंकने को तैयार हुए ही थे कि हमने आव देखा न ताव, उन पर टूट पड़े। दो लड़के तो भागने में कामयाब हो गए, परन्तु एक लड़का हमारी गिरफ्त में आ गया। कहीं उसे चोट नहीं पहुंचे और हम ही पुलिस की गिरफ्त में नहीं आ जाएं, इसलिए हमने उसकी ऐसी मरम्मत की कि उसे भी नानी याद आ गयी। सांप भी मर गया और लाठी भी नहीं टूटी। ''जवाब हो तो ऐसा !'' मेरे पड़ोसी ने विजय के मूड में कहा।

VEl l teuk rd

F श्रीमती संतोष श्रीवास्तव

‘‘अद्‌भुत विश्वास नहीं होता...दे ऑर मोस्ट स्पेशल पीपल्स एण्ड और एबव द प्लेनेट’’ शाहरा मानो अद्‌भुत लोक में विचरण कर रही थी। इलाहाबाद के संगम तट पर संन्यासी अखाड़े के शाही जुलूस में भारी संख्या में नागाओं को देखकर अचंभित और चमत्कृत थी वह। लगता था मानों धरती के विलक्षण प्राणी हैं वे। ऐसा उसने अपनी पैंतीस वर्ष की आयु में पहले कभी नहीं देखा था। अपने देश अमेरिका और लंदन के अलावा और भी कई देश देखे...बल्कि सैम के साथ पूरा यूरोप देखा, लेकिन यह अलौकिक दृश्य और वह तेजी से एक महंत जैसे दिखते त्रिपुण्डधारी के पास गई ‘‘कौन हैं ये ?’’

महंत ने पलभर शाहरा के कटे हुए सुनहरे रेशमी बाल, सेब जैसे गाल और भूरी नीली आंखों की ओर देखा, उसकी छरहरी काया जीन्स और टी-शर्ट में छुपी हुई थी। सिर पर सनग्लासेज, गले से लटकती दूरबीन और हाथों में कैमरा...

‘‘ये नागा हैं।’’

‘‘नागा ?’’ शाहरा ने दोहराया।

‘‘हां..ये विदेह हैं, अपनी देह की अनुभूतियों से परे जा चुके हैं.. अपनी समस्त सांसारिक इच्छाओं से मुक्ति पा ली है इन्होंने। आप भारतीय अध्यात्म को कितना जानती हैं ?’’

महंत ने हाथ में पकड़ी रुद्राक्ष की माला के दानों को आंखों से छुआया और गले में पहन लिया।

‘‘मैंने पढ़ा है...रामायण, गीता, महाभारत, भागवत्, महापुराण। मैंने हिंदी और संस्कृत सीखने, लिखने, पढ़ने के लिये वर्षों मेहनत की है।’’

शाहरा ने फख्र से कहा। उसके होंठों से हिंदी के वाक्य पहाड़ी झरने की तरह बह रहे थे। लेकिन महंत को आश्चर्य नहीं हुआ बल्कि गर्व हुआ ‘‘तब तो आप महर्षि विश्वामित्र को भी जानती होंगी ? उनकी तपस्या को स्वर्ग की अप्सरा मेनका ने खण्डित करके उनके अन्दर कामेच्छा जगा दी थी...न वे बच पाये इस इच्छा से, न इन्द्र देव...लेकिन ये नागा साधु...इन्होंने अपनी कामेच्छा पर विजय पा ली है।’’

शाहरा के मुंह से निकला ‘‘ओह !’’ और उसका मुंह खुला का खुला रह गया। उन पुराणों के ऋषियों को वह साकार देख रही थी; बल्कि उससे भी अधिक सत्य, विलक्षण, अद्‌भुत। आह ! सैम ने उसे किस नारकीय पंक में गले-गले तक धंसा डाला था...उस पंक में एक भी प्रेम कमल न था...उसका दिल पंखुड़ी-पंखुड़ी टूटा था।

कड़ाके की सर्दी में पूरे इलाहाबाद का कुंभनगर जकड़ा हुआ था। इतनी तेज सर्दी में तो शाहरा लंदन में अपनी नानी से विरासत में मिले आलीशान बंगले में रूम हीटर या फिर फायर प्लेस में चटखती सुलगती लकड़ियों की गरमाई में आराम से बैठी पढ़ती रहती है। उसकी केयर टेकर जूली उसके लिये काली कॉफी बना लाती है और वह नानी की भारतीय किताबों में डूबी रहती है। वह भारतीय अध्यात्म और दर्शन पर एक शोध प्रबंध भी लिख रही है। उसने नानी के नाम से एक वेलफेयर ट्रस्ट की स्थापना भी की है और वह शिक्षा और प्रकाशन के क्षेत्र में जरूरतमंदों की मदद भी करती है। जिन्दगी गुजारने के लिये क्या इतना काफी नहीं ?

नहीं..जिन्दगी कहां गुजर पा रही है...हर क्षण दिल मसोसता है। सैम की बेवफाई सांस-सांस बिखेर देती है। उसका मन उचट-सा गया है और वह लड़खड़ा गई है। सर्दीली हवा ने उसके गाल, नाक ठंडे कर दिये हैं। ठंडी लटें कानों को छुपाकर उड़ी जा रही हैं, लेकिन यहां गंगा का ठंडा बर्फीला पानी और संन्यासी अखाड़े के नंग-धड़ंग नागा साधुओं की ईश्वर का नाम बुदबुदाती डुबकियों, महात्माओं के पवित्र श्लोक...एक भव्य दृश्य अखाड़ों का ऐसा जुलूस, जैसा एक जमाने में राजा महाराजाओं का निकलता था। इस जुलूस की भव्य शोभा यात्रा में शामिल नागाओं और महात्माओं की एक झलक पाने को लोग घंटों से प्रतीक्षारत थे। करोड़ों की भीड़, देश विदेश के इतने यात्री... मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, हॉलैंड आदि देशों में फैले हजारों लाखों अप्रवासी भारतीयों के लिये तो यह महाकुंभ मानो उन्हें अतीत का विचरण करा रहा था। इसी भारत से उनके पूर्वज सौ डेढ़ सौ साल पहले इन देशों में मजदूरी के लिये लाये गये थे, लेकिन उनकी संतानों में आज भी भारत की धार्मिक आस्था कूट-कूट कर भरी है। वे वहां रहकर भी धर्म संस्कृति और अध्यात्म की गंगा बहाए हुए हैं। शाहरा ऐसी संस्कृति से आई है जहां इन आस्थाओं का कोई मूल्य नहीं। वहां किसी भी नदी का कोई ऐसा संगम नहीं जहां नियत समय तिथि पर मौसम के तेवर को नजरअंदाज कर डुबकी लगाई जाती है। वहां कोई नागा साधु नहीं जिसने कामेच्छा पर विजय पा ली हो। बल्कि उनके लिए एक-दूसरे में लिप्त होने का सबसे शर्तिया साधन काम ही है। उपभोक्तावादी, बहुउद्देशीय, विश्व का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र अमेरिका...जहां उसके अमेरिकन पिता अंग्रेज मां से प्रेम विवाह में बंधे और अपनी-अपनी आकांक्षाओं के जाल में उलझकर रह गये। उन आकांक्षाओं को पूरा करने की होड़ में उन्हें याद नहीं रहा कि उनकी चार संतानें हैं जिनमें से तीन भाईयों के बीच इकलौती बहन शाहरा अधिक भावुक और स्नेही स्वभाव की है। शाहरा को सबसे अधिक प्रेम अपनी नानी से मिला जो लंदन में रहती थीं और जहां वह छुट्टियां बिताने, क्रिसमस मनाने जाती थी और जहां उसका प्रेमी सैम

रहता था। शायद यही एक वजह थी, नानी के पास बार-बार जाने और अधिकतर समय गुजारने की। वैसे भी नानी अकेली रहती थी और मामा को उसके वहां रहने पर कोई ऐतराज न था।

सैम से उसकी पहचान क्रिसमस पार्टी के दौरान तब हुई जब लंदन में मौसम की पहली बर्फबारी हुई थी। पार्टी के लिये तैयार किये गये बड़े हॉल में अपने तीस पैंतीस दोस्तों को सैम ने अपनी डाक्यूमैंट्री फिल्म और कुछ पेय पदार्थों की विज्ञापन फिल्में दिखाई थीं। शाहरा के सांचे में ढले खूबसूरत जिस्म को परखकर, अपूर्व संभावनाओं को मन में संजोकर सैम ने उससे हाथ मिलाया था और अपने हाथ से उसे क्रिसमस केक खिलाई थीं। धीरे-धीरे यह पहचान खुद-ब-खुद एक समझौते में तब्दील हो गई। सैम की विज्ञापन फिल्मों के लिये काम करते हुए शाहरा उसे दिल दे बैठी। उसे सैम की हर हरकत लाजवाब लगती। शूटिंग पर वह वक्त से पहले ही पहुंच जाती। सैम सचमुच मेहनती था। फिल्मांकन के पहले वह सिचुएशन तैयार करके उसे बेहतरीन और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश करता था। उसे शूटिंग की तकनीक से लेकर कलाकारों के मूड का बहुत ख्याल रहता। उसकी सोच, प्रयास, लगन और कोशिश में कोई कमी नहीं थी। पैकअप के बाद वह शैम्पेन पीते हुए शाहरा को अपनी गोद में बैठाकर प्यार करता ‘‘मैं हॉलीवुड में व्यावसायिक और कलात्मक फिल्में बनाने का इच्छुक हूं।’’ शाहरा चकित रह जाती तो वह हंसकर उसके होंठों पर गहरा चुम्बन अंकित करते हुए कहता ‘‘हिचकॉक, फ्रैंक कोपरा, विलियम वाइलर, बिली वाइलर जैसे फिल्मकार इस धरती पर तो हुए हैं न, मैं भी उनमें से एक क्यों नहीं हो सकता ?’’ शाहरा सैम की जिन्दादिली पर कुर्बान थी। मन के बंधनों के साथ तन के बंधन भी खुलते गये और धीरे-धीरे दोनों एक दूसरे की जरूरत बन गये। प्रेम तो शाहरा को विरासत में मिला था। अपनी नानी से, अपने मामा से।

लेकिन सैम के प्रेम की दीवानगी उसे दीमक की तरह चाटने लगी। सैम विज्ञापन जगत में अपने पैर दृढ़ता से जमाता गया। फिल्म बाजार में उसकी मांग बढ़ती गई। शाहरा ने जिन भारतीय काव्य ग्रंथों से प्रेम की गहराइयों को नापा था, अब उनके पन्ने पलटने तक का समय उसे नहीं मिलता। शूटिंग से निपटकर वह सैम की बांहों में खो जाती। सैम ने अपनी फिल्मों में बतौर मॉडल उसे अर्धनग्न तो प्रस्तुत किया ही, उसे जी भरकर भोगा भी। बावजूद सावधानियों के उसे कई बार एबॉर्शन भी कराना पड़ा। एक भौंरे की तरह वह उसके फूल से बदन से रस की एक-एक बूंद चूसकर और लगातार पांच वर्षो तक खूब धन कमाकर, हॉलीवुड में किस्मत आजमाने चला गया। शाहरा ने उसे सच्चा प्यार किया था। वह उसके इंतजार में तनहाई की घड़ियां अक्सर लाइब्रेरी में बिताने लगी थी। मॉडलिंग के ऑफर बहुत थे, लेकिन वह केवल सैम की फिल्मों में ही मॉडल बनना चाहती थी। न जाने किस विश्वास ने उससे सैम का लगातार तीन वर्षो तक इंतजार करवाया। एक झटके से भ्रम टूटा, सैम ने हॉलीवुड में अपनी फिल्म का मुहूर्त्त किया और दूसरे ही दिन उसने अपनी फिल्म की खलनायिका से सगाई कर ली। शाहरा विक्षिप्त सी हो गई, टूट कर तिनका-तिनका बिखर गई और बिखर जाती, अगर नानी का देहावसान न होता। ऐन उसी वक्त एक रात नानी जो सोई तो सुबह उठी ही नहीं...बड़ी खामोशी से, चुपचाप नानी इस दुनिया से चली गईं। मॉम, डैड आये, नानी की सारी सम्पत्ति शाहरा के नाम वसीयत में लिखी देख वे चकित रह गये। वे शाहरा को अमेरिका ले जाना चाहते थे पर शाहरा तैयार न थी। वह लंदन में नानी की स्मृतियों के साथ रहना चाहती थी। सैम की दगाबाजी को महसूस करना चाहती थी। या शायद ऐसा करके वह अपने आपको सजा देना चाहती थी। ममा हफ्तों उसे मानसिक रूप से तैयार करती रहीं पर वह टस से मस नहीं हुई। ममा क्यों ले जाना चाहती हैं उसे ? उसकी शादी करने ? लेकिन वह अपने पति को देगी क्या ? सेम के द्वारा छोड़ा झंझर, निचुड़ा शरीरा और टूटा मन? नहीं, अब वह इन भ्रमों में नहीं पड़ना चाहती...थक चुकी है वह। बहुत विश्वास किया था सैम पर, लेकिन एक कुचले, मसले अतीत के सिवा और कुछ नहीं दिया सैम ने उसे। ममा लौट गई और शाहरा इस दुनिया में बिल्कुल अकेली पड़ गई।

अकेली तो मॉरीशस से आई सुचेता भी है जिसके साथ तम्बू में उसने सर्द रातें गुजारी हैं। यहीं एक साधु ने शाहरा को चिलम पेश की थी जिसे पीते हुए वह अलौकिक दुनिया की सैर करने लगी थी। उसे लगा था मानो सारी मानवता पर प्रेम की वर्षा करने वाली बस वही तो है, अथाह प्रेम के भंडार की मालिक वही तो है...तो वह मुक्त हस्त प्रेम बांट सकती है...बांट लेती है...अनंत है प्रेम की भूख...अनंत है यह तिलिस्म...अब इस तिलिस्म में सुचेता आन जुड़ी है, हॉलैंड से आई दीपा आन जुड़ी है। सुचेता के पूर्वज बिहार के रहने वाले थे जिन्हें अंग्रेज गिरमिटिया बनाकर मॉरीशस ले गये थे। तब से सुचेता का परिवार भाई भाभी और अविवाहित सुचेता वहीं के बाशिंदे हो गये हैं।

‘‘लेकिन हम आज भी भारत से जुड़े हैं।’’ सुचेता ने भाव विह्वल होकर बताया ‘‘मॉरीशस में गंगा जी नहीं हैं, न हममें उतना तपोबल कि भगीरथ ऋषि के समान अपनी गंगा को वहां ले जायें। लेकिन हमने एक कृत्रिम झील बना ली है और बनारस से गंगाजल ले जाकर उस पर छिड़काव किया है। अब वह पवित्र झील बन गई है। गंगा का स्पर्श ही ऐसा है। शिवरात्रि के दिन वहां दूर-दूर से अप्रवासी भारतीय इकट्ठा होते हैं और मिलजुलकर त्यौहार मनाते हैं।’’

शाहरा के मन में गंगा हिलारें लेने लगी ‘‘अद्भुत...अविश्वसनीय ...हजारों मील दूर रहते हुए और डेढ़ सौ वर्षो से छूटे अपने देश के प्रति ऐसी आस्था। हां...नानी ठीक कहती थीं...भारत की मिट्टी का कण-कण चुम्बकीय शक्ति से भरा है।

चिलम खत्म हो चुकी थी। आसमान तारों से खचाखच भरा था और संगम तट का नजारा ऐसा था कि मानों रात ने आने से इंकार कर दिया हो। भक्ति, संगीत और साधना का संगम संजोए बहुरंगी रोशनी से नहाये तम्बू, खुले रेतीले तट...जलते अलाव...एक दूसरी ही दुनिया की सैर शाहरा को करा रहे थे। तम्बू में ही बिछाई गई पत्तलों को वह आश्चर्य से उलट-पुलट कर देख रही थी। सुचेता ने बताया था कि पलाश के पत्तों से बनी हैं ये पत्तलें और पलाश होली के समय

फूलता है...चटख लाल रंगों से। तब उसके पेड़ों पर एक भी पत्ता नहीं रहता। फूल ही फूल खिले रहते हैं हर शाख पर। पत्तों को बांस के तिनकों से जोड़ा गया था। पत्तलों पर गरम-गरम पूड़ियां, आलू की तरकारी और आम का अचार परोसा गया था। शाहरा ने पहली बार ये भोजन चखा था और चखते ही लगा था कि ऐसे स्वादिष्ट खाने के लिये वह भारत में ही क्यों न जन्मी।

शाहरा कुछ विदेशी छायाकारों के साथ संगम के शाही स्नान का नजारा अपने कैमरे में कैद कर रही थी। गंगा की लहरों पर सिर ही सिर दिखाई देते थे या फिर उथले पानी से कमर-कमर तक डूबे नागा साधु जो जुलूस की शक्ल में हाथी, घोड़ों, रथों पालकियों सहित पधारे थे। कैसे-कैसे तो नाम हैं इन साधु, संन्यासी, वैरागियों के मतों के। महानिर्वाणी, निरंजनी, जूना निर्वाणी, दिगम्बर, निर्मोही, नया पंचायती, बड़ा पंचायती...ओह, बहुत उलझा हुआ, लेकिन विस्तृत है सब कुछ। अपार और रोमांचक। शाहरा अभिभूत सी तट के पश्चिमी घाट पर खड़ी थी कि उसने देखा, एक नागा साधु अपना त्रिशूल लेकर उस जापानी छायाकार के ऊपर झपटा जो सुबह से उसके साथ ही है। वह बचाने को दौड़ी। तभी और भी कई लोगों ने उनका त्रिशूल पकड़ लिया ''बाबा, क्षमा करें।''

नागा लाल-लाल आंखों से घूरने लगा ''हमने मना किया न कि हमारी फोटो मत लो, धर्म-कर्म में रुकावट डालते हो ?'' वह जापानी थर-थर कांप रहा था...लोगों की क्षमा, प्रार्थना से नागा लौट तो गया गंगा की ओर, लेकिन क्रोध से उसके नथुने फड़कने लगे थे।

शाहरा उस जापानी युवक के साथ कुंभनगर में टहलने लगी। करोड़ों की भीड़ ने उन्हें आश्चर्य में डाल दिया था। हालांकि वे भीड़ के लिये मानसिक रूप से तैयार थे पर इतनी भीड़ ! कड़ाके की सर्दी को अंगूठा दिखाते श्रद्धालुओं के लिये गंगा का पवित्र जल मानो गरम पानी का कुंड बन गया था। आखिर क्यों ये सब मौनी अमावस्या के ही दिन डुबकी लगाने को बेताब हैं ?...क्या कोई वैज्ञानिक तर्क है इसका ? कई लोगों ने शाहरा को बताया कि आज के दिन का यह महास्नान उनके लिये स्वर्ग के दरवाजे खोल देता है। वे मोक्ष प्राप्त कर जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाते हैं। जन्म ! बार-बार उसी आत्मा का जन्म ! कैसे संभव है ये ? नामुमकिन, लेकिन भारतीयों का यह विश्वास इतना गहरा है कि वह किसी तर्क को नहीं मानता। बस विश्वास है, आस्था है जो करोड़ों लोगों को चुम्बक की तरह खींच लाई है और इस आस्था को अपनी आंखों से देखने वह भी तो चली आई है यहां। समुद्रों, पर्वतों को लांघकर...वरना क्या कमी है ? उसके देश में; बल्कि उसके देश ने तो न जाने कितने देशों पर राज्य किया। भारत भी तो गुलाम रहा उनका। लेकिन यह आस्था तब भी नहीं टूटी थी। न जाने कितनी सदियों की आस्था है यह। सरस्वती इतने वर्ष पहले गायब हो गई कि भूगर्भ वैज्ञानिकों को उसके मार्ग की खोज करने के लिये जीवाश्म और सेटेलाइट इमेजरी का अध्ययन करना पड़ा। न ही उसका विलोप होना इतना निकट है कि उसके अस्तित्व को तलाशा जा सके। लेकिन वैदिक ऋचाओं में देवलोक की इन तीनों नदियों के स्वर्गिक संगम का महिमा गान मौजूद हैं। गंगा अपनी सुनहरी लहरों के रूप में, यमुना काली लहरों के रूप में और सरस्वती धवल क्षीण धार सहित जब एक दूसरे के आलिंगन में समाती हैं तो मानो स्वर्ग के द्वार खुल जाते हैं। यह विश्वास ईसा से तीन हजार साल पहले से मौजूद है। शाहरा ने यह सब पढ़ा है...पढ़कर हर तर्क को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परखा है, लेकिन इस महान आस्था का कोई उत्तर नहीं है उसके पास। माइकल जैक्सन और मेडोना के शो में लाईट और साउंड के आधुनिकतम उपकरण सजाकर भी कभी इतनी भीड़ नहीं बटोर पाये प्रायोजक। गांव देहात से सिर पर गठरी रखे लोग उमड़े पड़ रहे हैं। हर वर्ग का आदमी बस एक बार डुबकी लगाने की इच्छा के लिये चला आ रहा है। दो-दो तीन-तीन महीने के शिशुओं तक को सर्द पानी में डुबो रहे हैं ये लोग...ओह ! शाहरा के रोंगटे खड़े हो गये।

शाहरा जापानी युवक के साथ संगम के पूर्वी घाट की ओर चल रही है जहां साधु संन्यासियों, नागा बाबाओं के अखाड़े मौजूद हैं। चमक-दमक, साज-सज्जा और दिखावे में मानों एक दूसरे से होड़ लेते। हर अखाड़े का गेट किले या महल के गेट जैसा शानदार...नामी-गिरामी अखाड़ों के आगे तो कारों, जीपों की लाईन लगी है। कार में भगवा केसरिया परदे लगे हैं और यह सारी व्यवस्था उन निरासक्त, वैरागी, नंग-धड़ंग साधुओं के लिये उनके चेले चपाटों द्वारा की गई है जिन्होंने अपनी कामेच्छा पर विजय पा ली है। शाहरा और जापानी युवक अखाड़े का नजारा देखकर ठिठक से गये। कुछ नागा साधु अधलेटे चिलम फूंक रहे थे। उन्होंने दोनों को इशारे से बुलाया ''कहां से आये हो ?''

''लंदन''

''जापान''

दोनों उनके पैर छू कर वहीं पास में बैठ गये। पैर छूने का तरीका उन्होंने अभी ही सीखा था। साधु ने शाहरा से पूछा ''चिलम पियोगी ? लो, एक सुट्टा मारो और हमारे पैर दबाओ।''

शाहरा ने साधु की चिलम से सुट्टा मारा और पैर दबाने लगी। काले आबनूस से चमकते पैर शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं, लेकिन शाहरा दृढ़ता से पैर दबाती रही। उसके स्पर्श के बावजूद भी उस साधु के शरीर में कोई उत्तेजना नजर नहीं आई। अब तक तो सैम उसे दबोच चुका होता। सैम के लिये स्पर्श तो दूर मात्र उसकी नजदीकी ही उत्तेजना की वजह बन जाती। साधु उठकर बैठ गया। पीठ पर बिखरी अपनी जटाओं को समेटकर सिर पर बांधा ''पीठ भी मल दो।''

जापानी ने इसरार किया ''बाबा ! मैडम के साथ आपका एक फोटो खींच लेने दीजिये न।''

साधु ने अलमस्त हो आसमान की ओर निगाहें उठाईं ''खींच लो...खींच लो। यह तन तो मिट्टी में मिलना ही है। तुम्हारा कैमरा हमारी आत्मा की फोटो तो ले नहीं सकता और आत्मा का उद्धार होता है इच्छाओं के त्याग से।''

गंगा के नहाए ते कौन-कौन तक गये,
मीनहु न तरी जाकौ जल ही में घर है।

(शेष अंगले अंक में...)

व्यंग्य

c'keh d 'kg'kkgk !

F बटुक चतुर्वेदी, भोपाल

बेशर्मी के शहंशाहों, इस देश को आदिम युग में पहुंचाकर ही दम लेना। फिकवा दो सबके कपड़े, उतरवा दो द्रोपदियों की साड़ी-ब्लाउज। क्या धरा है इस बेमतलब की छिपा-छिपाई में ! तुम बिल्कुल मंजिल की तरफ ही बढ़ रहे हो। जिन आदिवासियों, गरीबों, भुखमरों के पास तन ढंकने को कपड़े नहीं, उनको कपड़े पहनाकर व्यर्थ खर्च बढ़ाने से क्या फायदा होता ? बच गये न बिना वजह के खर्च से ! और जिनके पास कपड़ों के अम्बार लगे हैं, उन्हें यह मंत्र देकर कि क्यों छिपा रखी है यह दौलत, इसका प्रदर्शन करो, लोगों के दीन-ईमान को ठगो और मौज मस्ती करो। तुमने फैशन शो, ब्यूटी कॉन्टेस्ट, डिस्को कॉन्टेस्ट, मदमाती पार्टियों का आयोजन नगर-नगर में करके ग्लेमर के प्रति जो उद्दाम लालसा जगाई है, वह तुम्हारा नाम गिनीज बुक में दर्ज करा कर ही रहेगी ! घर-घर में टी॰वी॰ फिट करके इस परम पिछड़े देश को तुम जिस प्रगति का पाठ पढ़ा रहे हो, वह वण्डरफुल है। तब तक लगे रहो ऐसे ही सुकृत्यों में जब तक कि पूरा देश कपड़े न उतार फेंके। लड़कियां मां-बाप की आंखों के सामने विवाह के पूर्व सारी क्रिया-प्रतिक्रयायें करके देख लें, मां-बाप तालियां न बजायें, किशोर-किशोरियां कमर हिला-हिलाकर सीटियां न बजायें, आंख न मारें, गलबहियां देकर न रपट पड़ें ग्लेमर के ब्लैक सी में ! शाबाश नग्न संस्कृति के पोषक, देश के महान रहबरों ! अच्छा किया, तुम भूल गये गांधी के सिद्धान्तों को। क्या धरा था उन सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, भाईचारे के सिद्धांतों में ! अब तो जैसे भी हो सत्ता पर काबिज हो जाओ, लूटो खाओ, हाथ मत आओ। ऐशो आराम, अय्याशी में जो मजा है वह कर्महीनों को कहां नसीब ? मनुष्य जन्म बार-बार नहीं होता और न बार-बार सत्ता हाथ में आती। अतः तुम जो अपने मित्रों, रिश्तेदारों, भाई-भतीजों, लगुओं-भगुओं, चमचों, लोटों के घर में रहे हो, वह ठीक ही तो कर रहे हो ! सत्ता हासिल करने पर यदि तुम बांध, सड़क, पुल, स्कूल, अस्पताल, रेलगाड़ी से लेकर जानवरों का चारा तक पचाने की कला न सीखोगे तो कैसे चलाओगे इस देश को। लगे रहो प्यारे अपने मिशन में। तुमने बाहुबलियों, तस्करों, चोरों-डकैतों को अभयदान देकर अपना रास्ता सुगम कर लिया है। न तुम उनके आड़े आओ, न वे तुम्हारे आड़े आयें। खूब मिलजुल कर इस देश को खाओ। जब मुगलों, अंग्रेजों, फ्रांसीसियों जैसे विदेशियों के खाने से यह देश नहीं मिटा तो तुम्हारे कारनामों से कैसे मिटेगा। शाबाश ! भारत मां के सपूतो। चलने दो तुम्हारा निर्वस्त्र नाच !

पथ-भ्रष्ट सत्ताधीश अफसरों, जयहिन्द ! तुम भारत के वह हीरे हो जिनके आगे कोहिनूर भी पानी भरता है। तुमने नेताओं से दुरभि-संधि करके सर्वोत्तम काम किया है। तुम पुलिस अफसर हो तो सत्ताधारी नेता के दो-चार काम कर दो और फिर कर लो बारे-न्यारे ! खूब हाथ बनाओ, लॉकअप में बलात्कार करो या हत्या, कौन माई का लाल तुम्हारा बाल बांका करेगा ? तुम डकैतों को पालो, लुटेरों, तस्करों, सटोरियों, हत्यारों जिसको चाहे सरंक्षण दो, खूब माल बटोरो, थोड़ा बहुत नेता और अपने ऊपर वाले को दो और जनता की खाल उधेड़ते रहो। किसी सचिवालय में बड़े अफसर हो तो अरबों-करोड़ों की फाईल पर तब तक दस्तख्त न करो जब तक तुम्हारा हिस्सा तुम्हें न मिल जाये। हेड ऑफिस में हो तो नियुक्ति ट्रांसफर, टेण्डर, खरीदी, लाइसेन्स, परमिट जहां दांव लगे, हाथ मारो, और पकड़े जाओ तो थोड़ा बहुत ले दे के दूध के माफिक पाक-साफ दिखने लगो, तुम्हारे पावर की नंगई दूनी बढ़ती रहे प्यारे, उसमें कमी मत आने देना।

लक्ष्यभ्रष्ट लक्ष्मी पुत्रों ! तुम व्यापारी, ठेकेदार, निर्माता, वितरक, कमीशन एजेन्ट, स्टॉकिस्ट, ब्रोकर, खुदरा, थोक जैसे जो कुछ भी हो लगे रहो, जनता को चूना लगाने में। सत्ताधारियों, विरोधी दलों, अफसरों को पटाकर रखे हो, यही तो तुम्हारा कमाल है। गंगा गये तो हर गंगे, जमुना गये तो जय जमुने। अपने घरों को भरने में कसर मत करना प्यारो। ठेकेदार हो तो रेत के पुल, बांध, सड़क बनाओ ! ऊपर वाले, नीचे वाले की जेबें गरम करो और फूलो-फलो का तुम्हारा फार्मूला नम्बर वन है ! बहके व्यापारी भाईयों, तुमने जो ब्लैक करने, नकली माल बनाने, बेचने का मार्ग अपनाया है, वह देश को चर्मोत्कर्ष पर पहुंचा कर रहेगा ! अफसर नेताओं को लेते-देते रहो और सड़क पर खुलेआम व्यापारिक नंगई करो, कौन क्या उखाड़ लेगा तुम्हारा ?

छलचित्र, मरियल, सड़ियल निर्माताओं ! तुम्हारे करिश्मों से देश कहां का कहां पहुंच गया ! तुम्हारे छलचित्र, मरियल, सड़ियल देखकर हम गर्व से कह सकते हैं कि हमने भारत की सड़ी-गली संस्कृति, फफूंद लगी कलाओं और बदबू दे रही परम्पराओं को तिलांजलि देकर सीधे पश्चिम की उज्ज्वल कला, साहित्य, संस्कृति और परम्पराओं को गले लगा लिया है। अपने छलचित्रों में तुम जो ग्लेमर दिखा रहे हो, उसे देखकर इस देश के करोड़ों भूखे-नंगे गरीबी रेखा से नीचे जीने वाले खुश होकर ताली पीटते हैं और अपने दुःख-दर्द को भूलकर तुम्हारे गुणगान करते नहीं अघाते। तुमने जो अपने चित्र-विचित्रों में कदम-कदम पर गम गलत करने के नुस्खे बताये हैं, वे आज के भारतीय नवयुवक अपने जीवन में उतारकर वैतरणी पार करने में लगे हैं। कट्टा, स्टेनगन, ए॰के॰-47, छुरे, चाकू,

मार-काट दिखाकर तुम भारतीय नवयुवकों को एक नया प्रगतिशील मार्ग दिखा रहे हो। चलने दो कलाकारों, अपने कलात्मक नंगे-अधनंगे क्रियाकलाप !

सत्ता के चौथे पाये के बुद्धिमान कर्णधारों ! तुम्हारे फलते-फूलते परिवार को देखकर जन-जन गद्‌गदायमान है। सत्ता के तीन पाये जब फल-फूल रहे हों, तब भला चौथा पाया क्यों दुर्बल रहे ? तुम्हारे चौरंगे, पचरंगे कवर पृष्ठों, दस-दस, बीस-बीस पृष्ठों के विज्ञापनों, हसीनाओं की अर्धनग्न तस्वीरों को देखकर भारत माता गर्व से फूली नहीं समाती होगी ! बड़े से बड़े घोटालेबाज की खबर लेकर उसे किस रंग में किस ढंग से पेश कर पाठकों को दंग करना तुमसे ज्यादा कौन जानता है ? तुम्हारा दायां हाथ क्या कर रहा है, इसकी खबर बायें हाथ को भी नहीं होने देने में तुम माहिर हो। अपनी कलम को ढक्कन मत लगाना, नंगी ही रखना प्यारों, तभी तो देश विकास के शिखर पर पहुंचेगा।

मेरे देश के प्यारे भूखे नंगों, तुम इसी तरह सबकुछ देख सुनकर भी अंधे, बहरे, गूंगे बने रहना, किसी से कुछ न कहना अन्यथा देख तो रहे हो सच कहने, सही देखने और सही सुनने वालों की दशा। माना कि तुम करोड़ों में हो मगर, इससे क्या होता है ? करोड़ों भेड़ों को एक लठ्ठधारी चरवाहा युगों से हांकता आ रहा है, हांक रहा है, और हांकता रहेगा। लठ्ठधारी चरवाहों की नंगई जिन्दाबाद ! बेशर्मी के शहंशाहों की नंगई की जय !

l

j[kk,

F स्वर्ण तलवाड़, यू.के.

उभरती रेखाएं, सिमटती रेखाएं
बनती रेखाएं, मिटती रेखाएं
हाथों की रेखाएं, मस्तक की रेखाएं
या कल्पना में यादों की रेखाएं

ज्योतिष रेखाएं
क्षितिज रेखाएं
शातिज रेखाएं

हो मांग की रेखा
या हो लक्ष्मण रेखा
अद्‌भुत चमत्कार है इनका

समान्तर रेखाएं कहती हैं,
मिलन भले न हो पर साथ तो चलेंगे
लक्ष्मण रेखा कहती है,
सीमाओं में ही रहना जीवन है।

क्षितिज रेखा कहती है,
जीवन है भ्रमजाल
गणित की रेखाओं जैसे
एक-एक कर बिन्दु से जुड़कर
बन जाते हैं रिश्ते-नाते
इन्हीं रेखाओं से घिरा है मानव जीवन।

l

gku nk

F गौतम सचदेव, यू.के.

कुछ दर्द खास होने दो
मिलकर उदास होने दो

होश-ओ-हवास खोने दो
टूटा गिलास होने दो

है वक्त लुटता पल-पल
अब आस-पास होने दो

फिर याद को कसने दो
चुभती मिठास होने दो

होंठों के जुर्म से मिलकर
मुजरिम न प्यास होने दो

है रात सर्द अंधियारी
लिपटा उजास होने दो

हर फूल एक आंसू है
होगा कयास होने दो

कुछ मौन शब्द पलकों के
अब उपन्यास होने दो

ये रात बांसुरी सी है
रस और रास होने दो।

l

vke dk iM

F अभिमन्यु अनत, मॉरीशस

मैं अपने सामने की स्तूप जैसी दिखने वाली पत्थरों की मुंडेर को देखता रहा। गन्ने के खेतों के अपने साथियों के साथ, हमने मारीच देसवा की पथरीली जमीन के सीने को चीरकर एक-एक पत्थर को बाहर निकाला था ताकि बंजर पड़ी मिट्‌टी उपजाऊ हो सके। धरती के भीतर से निकले उन पत्थरों से बुआई और कटाई में अड़चन न पैदा हो, इसलिये हम मजुदरों ने उन्हें बड़े करीने ढंग से सजाते हुए बौद्धों के स्तूपों का सा रूप दिया था। दूर तक इस तरह के कई स्तूप द्वीप के दूसरे इलाकों में भी फैलते गये थे।

मेरी निगाह उस मुंडेर पर टिकी हुई थी जो नदी के पास थी और जिसपर के आखिरी पत्थर को ऊपर पहुँचाकर उसे ढंग से सजाते समय बीच के एक पत्थर के लुढ़क जाने से मैं उस ऊँचाई से फिसलकर नीचे गिरा था। पर मैं उस स्तूप को देखते हुए अपने गिरने और लंगड़े हो जाने की बात न सोचकर अपने बेटे के बारे में सोच रहा था। मेरा ग्यारह साल का मोहन जो आज साल भर का होने को है, घर नहीं लौटा। मुंडेर की दाईं ओर नदी थी और बाईं ओर वह आम का पेड़ था, मेरे बेटे की ही उम्र का। कभी मैंने उस पेड़ पर गर्व किया था, आज उसे कोसता रहता हूँ।

अपने ही पैरों पर खुद कुल्हाड़ी मार ली थी मैंने।

मेरे सामने कंटीले तारों के अहाते में खड़ा आम का वह पेड़ दूसरी बार के लिये आमों से लदा हुआ था। इस द्वीप का सम्भवतः यह पहला आम का पेड़ था। बारह साल साल पहले जब मॉरीशस के गन्ने तथा शक्कर कोठियों को अपने खेतों और कारखानों में कामगार मिलना दुर्लभ हो गया था, जब विश्व भर में दास प्रथा की समाप्ति के बाद अफ्रीकी दासों ने अपनी यातनाओं से ऊब कर बगावत कर दी थी और कोठियों से भागकर जंगलों में जा बसे थे, तब मारीच देसवा के दलाल बिहार के हमारे गाँवों में पहुँचे थे।

हमारे इलाके में भारी सूखा पड़ा था। नौकरियाँ नहीं थीं। हांडियों में अनाज नहीं थे। बच्चे भूख से तड़प रहे थे। मारीच देसवा से पहुँचा सरदार गाँव-गाँव यह कहता फिरता रहा

क्यों मर रहे हो यहाँ। मेरे साथ चलो। जहाँ पत्थर उलटने पर सोना ही सोना मिलता है।

भूख के मारे लोग पूछ बैठे।

कहाँ ? कहाँ ?

समन्दर पार मारीच देश में। बेशुमार धन कमाकर अपने इस देश को लौटो।

चला जा। मालामाल होके लौट आ। हियाँ भरम गंवावल से का मिली।

मारीच देसवा जन्नत है जन्नत।

किसी ने पूछ लिया था।

मारीच और जन्नत ?

मॉरीशस भैया मॉरीशस, शकर का देसवा।

उन चिकनी-चुपड़ी बातों में लोग तो फंसे ही, लोगों की तरह मैं भी छलावे में आ गया। बाप तो महामारी में चल बसा ही था। माँ समझाती रही। बोलती रही, बलदेवा धोखे में मत आओ, पर माँ को रोते छोड़ मैं पटना से कलकत्ता पहुँच कर ही रहा। कलकत्ते में अपने मौसा के घर दो दिन ठहरकर तीसरे दिन प्रवासी डिपो में जाकर मॉरीशस जाने वाले बेशुमार शर्तबंद मजदूरों में शामिल होकर जहाज में जगह लेने के लिये भर्ती हो गया।

मेरा मौसा मुझे बन्दरगाह छोड़ने आया। पहले मौसी के तैयार किये सतवे की पोटली थमाई। फिर आमों भरी छोटी-सी टोकरी थमाकर मौसा ने कहा था

सुन रखा है कि यह काला-पानी की सी दुर्गम यात्रा है। अपना ख्याल रखना, सतवे के साथ ये कुछ अधपके आम हैं।

और जब मैं मौसा के पाँव छूकर मॉरीशस के दलाल के पीछे चलने को हुआ तो मौसा ने आखिरी हिदायत दी थी

बेटे ये आम चार-पांच दिन में पक जायेंगे। इन आमों की गुठलियों को समन्दर में मत फेंक देना। अपने नये देश में इन्हें बो देना।

जिस जहाज से हम गिरमिटिया मजदूरों को तीस दिन की लम्बी यात्रा करके नये देश को पहुँचना था, उसका नाम दोना-कामेलिया था। जहाज में मेरी पहली जान-पहचान जिस हमउम्र के साथ हुई, वह बिहार के आजमगढ़ का सुलेमान था। बगावत के आरोप में उसे कैद की सजा हुई थी, पर चहारदीवारी के भीतर जाने से पहले वह बिहार से भागता हुआ कलकत्ता पहुँच आया था। मेरा दूसरा साथी मद्रास के कुदालोर प्रांत का सुब्रमण्यम था जिसे हिन्दी बहुत कम आती थी फिर भी वह मुझसे हिन्दी में ही बातें करता।

इसी तरह आंध्र के विशाखापत्तनम इलाके का आपाडू भी अपनी टूटी-फूटी हिन्दी बोलकर अपनी रामकहानी सुना गया था। वह बम्बई का पांडु था जो हिन्दी के साथ-साथ भोजपुरी में बात कर लेता था। रत्नागिरी में उसका जो पड़ोसी था, वह बिहार का था और वह भोजपुरी लोक-गाने भी गाया करता था जो कुछ-कुछ पांडु को भी आने लगा था।

जहाज में दो सौ बीस यात्री थे, भारत के चार प्रांतों से। जीवन में पहली बार मुझे ऐसा प्रतीत हुआ था कि उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र,

मद्रास तथा आंध्र, इस जहाज पर चार दूर-दूराज के प्रदेश न होकर अब एक सम्पूर्ण संसार में बदल गये थे। मेरे पास ख्याल की पुष्टि करते हुए कुदालोर के सुब्रमण्यम ने कहा था

मेरा कुदालोर भारत के सभी प्रांतों से कितनी दूर लगता है पर इस जहाज में ये सभी प्रांत कितने पास आ गये हैं। कितना अच्छा लग रहा है।

उसकी हिन्दी में तमिल शब्दों के भी शामिल हो जाने के बावजूद मुझे उसकी बातें समझने में कभी किसी तरह की कठिनाई नहीं हुई। जहाज में सुब्रमण्यम ने अपनी रामकहानी हम सभी को सबसे पहले सुनाई थी। वह गाँव के कोविल के बच्चों को तमिल पढ़ाता था। एक शाम कोविल के पुजारी ने उसे बच्चों से यह कहते सुन लिया था कि जात-पात का चक्कर भगवान् का चलाया हुआ न होकर आदमी का चलाया हुआ था। इस गुनाह की सजा यह रही कि ब्राह्मण पुत्र होते हुए भी पुजारी ने उसे उस दिन से कोविल के प्रांगण में प्रवेश होने ही नहीं दिया।

कलकत्ता से ''दोना-कामेलिया'' के लंगर उठाते ही कप्तान ने डैक पर इकट्ठे सभी यात्रियों से कहा था कि इस तीस दिन की लम्बी-यात्रा के दौरान किसी भी यात्री को यह न भूलना चाहिये कि इस जहाज में एक ही आदमी का हुक्म चलेगा

और वह आदमी मैं हूँ।

उसकी अंग्रेजी-हिन्दी मिश्रित इस बात को बहुत कम लोग समझ पाये थे और फिर लोगों ने हर बात समझने की कभी कोई कोशिश की ही नहीं, उन सभी का लक्ष्य तो केवल यह था कि कब हम मंजिल को पहुँचें और कब मालामाल होकर अपने जनों के बीच लौटें। पांडु ने तो कहा भी था कि अरे भाई, हमें आम खाने से मतलब है, गुठली गिनने से नहीं। और उसकी इसी बात ने मुझे याद दिला दी कि मेरी झोली में मौसा के दिये हुए पाँच आम थे जो मेरे बिस्तर की बगल वाले कोने में रखे हुए थे। दो दिन पहले मैंने उन्हें बाहर निकाल कर जानना चाहा था कि उनमें से कोई एक भी पका हुआ तो मित्रों के बीच बाँटकर खा सकते थे, पर पाया था कि अभी और भी दो दिन लगेंगे उनके अच्छी तरह पकने में।

जहाज का खाना इतना घटिया और अनपच था कि हम लोग खाने की रुचि खोकर भी उसे खाने को विवश थे। कई लोग उसे खाकर बीमार भी पड़ गये थे। मित्रों तथा अन्य सहयात्रियों की मांग पर मैंने दोना-कामेलिया के कप्तान से माँग की कि जहाज में रहने-सोने की व्यवस्था जैसी भी थी, हमें कबूल है पर खाना तो हमें ढंग का मिले। उसने वायदा भी किया कि आईन्दा हमें अच्छा खाना मिलेगा, पर वह दिन कभी आया ही नहीं।

मेरी झोली के आम जब पके तो पाँचों एक साथ। हम साथियों ने उन्हें बांटकर खाया। जब आजमगढ़ का सुलेमान अपने हाथ की गुठली के रस की आखिरी बूंद तक चूसकर उसे फेंकने लगा तो मैंने उसके हाथ को थाम लिया। उसके हाथ से गुठली लेकर मैंने उससे कहा था

फेंको मत।

वह बोला था

कमाल है। आम खा के गुठली फेंक देवल जाता। तू एक फेंके से काहे रोकत बानी ?

मुझसे पहले पांडु ने जवाब दिया था

यही है कि प्रायः लोग आम खाकर गुठली को फेंक देते हैं क्योंकि उनका आम खाने से मतलब होता है। पर कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो गुठली को संजोकर रख लेते हैं। उसमें अंकुर आने पर उसे बो देते हैं।

सुलेमान हंसकर बोला था

समन्दर में आम के गांछ उगाय के इरादा बा का भैया ?

मैंने सुलेमान के इस व्यंग्य का कोई उत्तर दिये बिना बारी-बारी से पाँचों गुठलियों को बटोर कर झोली में रख लिया था। उस दिन अपनी माँ की बगल में बैठी चाँदो पहली बार मुस्काई थी और पहली बार उससे बात कर जाने की हिम्मत मुझमें पैदा हो आयी थी। उससे सीधे बात न करके मैंने उसकी माँ का सहारा लेकर उससे पूछा था

तुम्हारी माँ यह रात-दिन क्या पढ़ा करती है ?

उसने मेरे इस प्रश्न का उत्तर तत्काल नहीं दिया था। अपने हाथ की पुस्तक को पीले कपड़े में लपेटकर जब उसकी माँ जहाज की अन्य स्त्रियों के बीच जहाज के नीचे वाले भाग में चली गयी तो मैंने चाँदो की ओर देखा था। तब मेरी आँखों में एक मौन प्रश्न था, पर चाँदो मेरे पहले प्रश्न का उत्तर देते हुए बोली थी

मेरी माँ रामायण पढ़ती रहती है। मेरे बाप का छोड़ा यही एक धन है हमारे पास।

और फिर दूसरे दिन बाद ही चाँदो मुझे यह बता पायी थी कि उसके बाप को रामायण कंठस्थ आती थी और वह रोज उसके दो पन्ने लिखता रहता था। फिर तो उसकी माँ ने कपड़े से अलग करके वह हस्तलिखित पुस्तक मुझे दिखाई थी जिसमें जहाँ-तहाँ उसके बनाए हुए सीता और राम तथा हनुमान आदि के रेखाचित्र भी थे।

जहाज में खाने-पीने से लेकर नहाने-धोने तथा सोने की व्यवस्थाएं एकदम खराब थीं। सुबह की मौलिक आवश्यकता के लिये दुर्गन्ध भरे दो पायखानों के सामने लम्बे समय तक कतार में खड़ा रहना पड़ता था। पांडु बार-बार एक ही बात कहता रहता

यह तो सचमुच की काले-पानी वाली यातना भुगतनी पड़ रही है, जहाँ दिन समाप्त ही नहीं हो पाता और रात दोगुनी लम्बी हो जाती है।

और जहाज का कप्तान भी बार-बार यही कहता रहा था कि तीस दिन में हमें जमीन पर उतार कर रहेगा। शायद ऐसा ही होता, अगर यात्रा के दौरान दो बार मौसम उतना अधिक खराब न हो जाता और तूफान तक की नौबत न आ जाती। जहाज के तीनों बादबान उतारने में नाविकों को यात्रियों की मदद लेनी पड़ी थी। खराब खाने का सबसे बड़ा हादसा तब पेश आया जब बम्बई की एक स्त्री की दस्त और उल्टी के कारण मृत्यु होकर रही। बीमारी को अधिक बढ़ने से रोकने के लिये उसके शव को पानी में फेंक देना पड़ा। ऐसा करके भी बीमारी को तुरन्त रोका नहीं जा सका। वह रोग और छः लोगों

की जान लेकर रहा। करीम ने दर्द भरे व्यंग्य में मुझसे कहा था

एके कहत बानी कुदरत का खेल। आदमी को मरने पर जमीन में दफ नाया जाता है। हियाँ से पानी में दफनावल जाता। अहोभाग हमलोग का।

जहाज की दुर्गम यात्रा और बीमारी की विकराल स्थिति के बावजूद हमारा जहाज मारीच द्वीप को पहुँचकर रहा। चाहे तीस दिन की यात्रा चालीस दिन में पूरी हो पायी। मैं अपने साथियों के साथ जब दोना-कामेलिया को छोड़ पाल वाली छोटी नाव में सवार होकर पोर्टलुई के बंदरगाह से प्रवासी घाट को बढ़ रहा था तो गरमी जोरों की थी। हमने जब भारत छोड़ा था तो वहाँ जोरों की ठंड थी जबकि मरीच देसवा में इतनी भारी गरमी थी। मौसम के इस रहस्य की बात तो बाद में समझ में आयी कि जब भारत में गरमी होती है तो यहाँ ठंड और यहाँ ठंड तो वहाँ गरमी। मैं जब जहाज से उतरकर छोटी नाव में सवार हो रहा था तो मेरी झोली से आम की गुठलियों में से दो गुठलियाँ पानी में गिर गईं थीं। तीन के बचे रहने का मन में संतोष था। हम सभी ने धरती पर सही-सलामत उतारने का ऊपर वाले को शुक्रिया कहा। किसी तरह काला-पानी पार करके हम मारीच देसवा की धरती पर पाँव रख सके। पर वहाँ भी प्रवासी घाट के डिपो में और तीन दिन के नर्क को झेलना ही पड़ा। छावनी में चाँदो की माँ भी बीमार पड़ गयी, पर सही वक्त पर डाक्टर द्वारा दवा-दारू और सही इलाज के कारण वह तीसरे ही दिन चंगी होकर वहाँ के अस्पताल से निकली।

मैंने मन ही मन अपने मौसा से प्रतिज्ञा की कि अब इन बाकी तीन आंठियों को मैं अपनी जान से अधिक महत्त्व देकर अपने साथ रखूंगा। उस समय मुझे क्या मालूम था कि मैं अपने मौसा से गलत वायदा कर रहा था। तीसरे ही दिन मेरी यह प्रतिज्ञा खोखली प्रमाणित होकर रही, जब भेड़-बकरियों की तरह हमें झुंडों में खड़ा करके शक्कर कोठी के मालिकों के हवाले करने की हमारी बारी आई। गिरमिटिया प्रवासियों के रक्षक की पूरी देखरेख के बावजूद हमारे साथ मजदूरों से कहीं अधिक जानवरों के जैसा बर्ताव किया गया। हमारे गलों में नम्बर के टिकट तो लटकाये जा ही चुके थे, औपचारिकताएँ भी बहुत भारी पड़ रही थीं। मालिकों और हम मजदूरों के बीच के दलाल भी मालिकों की मनमानी को बढ़ावा देने लगे थे। हमारे बीच से एक माँ-बेटी को उनकी टोली से निकालकर उन्हें मजबूरन उस गोरे मालिक को सुपुर्द किया जा रहा था जिसे दोनों स्त्रियाँ फब गईं थीं।

मैंने जब देखा कि गोरे मालिक के जोरदार अधिकार के सामने जब भारती प्रवासी रक्षक का हस्तक्षेप भी बेकार चला जा रहा था तो मैं उस छीना-झपटी के बीच जा खड़ा हुआ और मेरी बगल में सुब्रमण्यम, पांडु और आपाडू भी आ डंटे। जिस भाषा में तकरार हो रही थी वह तो मेरी समझ से बाहर की बात थी, पर मुद्दे को मैं बहुत अच्छी तरह समझ पा रहा था। प्रवासी रक्षक की बातों से तो मुझे पहले यह पता चला गया था, वह अंग्रेजी और फ्रेंच के साथ-साथ हिन्दी भी अच्छी तरह बोल लेता था। इसलिये मैंने उससे कहा

आपने पहले ही दिन हमसे कहा था कि हमारे साथ जबरदस्ती नहीं की जायेगी। जब आप पति-पत्नी को दो अलग कोठियों में जाने से रोक सके तो फिर इन माँ-बेटी को आप अलग क्यों होने दे रहे हैं ?

इसलिये कि वह अधिक रुपये दे रहा है ?

गोरे मालिक की बगल में, उसके जो दो सरदार थे, वे मालिक से भी अधिक अधिकार जताते लग रहे थे। उनमें एक तो मलगासी क्रिओल था और दूसरा हमारी ही तरह दिखने वाला भारतीय लग रहा था। दूसरा व्यक्ति अपने हाथ की लाठी को दोनों हाथों से पकड़े मुझे और मेरे साथियों को पीछे धकेलने लगा। मैं और मेरे साथियों ने उसकी लाठी को अपनी मुट्ठियों में जकड़कर उसे पीछे किया और इसी ठेला-ठेली में मेरी झोली से तीनों गुठलियाँ नीचे गिर पड़ीं।

मामले को संगीन होते पाकर प्रवासी रक्षक झपट कर प्रवासी डिपो के दफ्तर के भीतर पहुँचा और मजिस्ट्रेट तथा दो पुलिस के साथ सामने आ गया। गोरे मालिक को अपने लठैतों के साथ पीछे हटना पड़ा पर मेरी झोली से गिरी आंठियां मुझे नहीं मिल पा रही थीं। मेरे और मेरे साथियों का उन गुठलियों का ढूंढ़ना हमारे सहयात्रियों को बड़ी ऊटपटांग बात लग रही थी, पर हम खोजते ही रहे। हताश हो चले थे जब चाँदो दो गुठलियों को अपनी हथेली में लिये मेरे सामने आ गई थी।

जिस कोठी के मजदूरों में मुझे शामिल किया गया, उसमें मेरे साथ चारों मित्रों में केवल सुब्रमण्यम ही आ सका, बाकी तीनों को अलग-अलग शक्कर कोठी में जाना पड़ा। सुब्रमण्यम ने मुझे दुःखी पाकर धीरे से मेरे कान में कहा था

चाँदो अपनी माँ के साथ तो हमारे साथ है।

रेलगाड़ी से उसी शाम को हम सेंतहिबेर शक्कर कोठी में पहुँचे। हमें गन्ने के सूखे पत्तों की जिन झोपड़ियों में रखा गया, उनमें प्रवेश पाने के लिये सिर को घुटनों तक झुकाना पड़ा था। पर मेरा हौसला बना रहा, क्योंकि गन्ने के खेतों में उन तमाम जुल्मों, अपमानों और अन्यायों को झेलने के लिये मेरे साथ मेरी बगल में चाँदो थी। कोई तीस-चालीस दिन बाद मैंने दोनों बची गुठलियों में से एक को अंकुरित होते पाया जिससे दूसरे के सूख जाने का दुःख जाता रहा।

प्रवास के दौरान जिस पहले खेत में मुझे जमीन से पत्थर-दर-पत्थरों को हटाकर गन्ने बोने का पहला अवसर मिला, उसी खेत में मैं अब तक दो फुट ऊँचे हो आये आम के पौधे को बोकर विभोर हो उठा था। चाँदो भी मेरी बगल में मेरी मदद करती हुई उस पौधे को निहारा करती थी। बोली थी

एगो आंठी जमल एगो ना जमल।

मैं बोला था कि अरे, इस एक ही गांछ से देखना एक दिन इस द्वीप में कितने आम के पेड़ फैल जायेंगे। इस पर चाँदो पूछ बैठी थी

अपन बोअल गांछ के फल हमनी खा पावब स ?

हम न सही हमारे बच्चे तो खा पायेंगे।

चाँदो के हाथ अपने आप अपने पेट पर पहुँच गये थे।

सामने से कंधे पर बन्दूक थामे मंगरू सरदार को आते देखा तो मेरे दस साल पहले का घाव और भी अधिक ताजा होकर मुझे

तिलमिला गया। इसी मंगरू सरदार की सामंती नसीहतों को अपने कानों में गूंजता हुआ सुनता रहा था। वास्तव में ये नसीहतें मंगरू सरदार की नहीं थीं। यह तो कोठी-कोठी मालिकों की हिदायतें थीं। मौन हिदायतें। जिन्हें स्वर देते थे कोठी के सरदार।

''गिरमिटिया मजदूरो ! तुम्हारा फर्ज मेहनत करते रहना है। पसीना बहाते रहना है। स्वामीभक्ति निभाते रहना है।''

गन्ने के खेतों और कारखानों की ओर से हर गिरमिटिया मजदूर को यह आदेश था

तुम सांस मत लेना, यह अधिकार तुम्हारा नहीं तुम्हारे आका का है। तुम सोचने की कोशिश मत करना। यह काम तुम्हारे आकाओं का है। तुम निर्णय मत लो। निर्णय उसके होंगे जिनकी मेहरबानी से तुम जी रहे हो। तुम्हारा काम, तुम्हारा फर्ज, तुम्हारा धर्म, बस यही है कि तुम अपने मालिक के लिये जियो, अपने मालिक के लिये मरो। उसकी सेवा में हर पल दोनों पाँवों पर खड़े रहो।

मैं और मेरे तमाम साथियों ने यही तो किया था। मैं तो अपना एक पाँव लिये हुए भी उसी पहले जैसे अपने को दोनों पांवों पर ही खड़ा पाता रहा था। पर अब तो मोहन को खोकर अपने को दोनों पाँवों से विकलांग पाने लगा था। कड़कती धूप में चाहे वह मालिक के जूत्तों की मार होती, कोड़े और बाँसों के प्रहार होते या सरदारों की गालियों की बौछारें, हमें चुप्पी साधे पसीने बहाते रहना था। मूसलाधार बारिश होती तो भी कमर सीधी करना मना था। किसी पेड़ के नीचे पहुँचकर अपने को भीगने से रोकने की इजाजत नहीं थी। सब से पहले यह मंगरू ही बरस पड़ता हम पर। धर्म बदलकर वह मजदूर से सरदार बना था और अब मंगरू की जगह वह मोरल था। हमारी शक्कर कोठी का यह मंगरू सरदार तो कभी मलगासी सरदार और मालिक से भी अधिक क्रूरता के साथ पेश आता था। उसी ने तो...।

वह घटना भुलाई नहीं जाती, आखिर क्यों ? पीड़ितों को स्मृति क्यों दी गयी थी ? लाख दबाने की कोशिश करके भी मैं अतीत को दबा नहीं पाता। और क्यों मैं सामने के इस आम के पेड़ के सामने आ खड़ा होता हूँ। इधर से होकर जब भी किसी शाम को घर लौटता हूँ तो चाँदो मेरी उदासीनता को देख पूछ बैठती है

आज फिर आम वाले खेत के रास्ते से लौटे हो ? हमें भूल जाय के बोलके खुदे काहे ऊ बात को याद करते रहते हो।

मेरी पीठ के पीछे आँसू बहाने रहने वाली चाँदो अपने कमजोर बदन के साथ भीतर से कितनी ताकतवर थी। मेरे सामने कितने संयम के साथ अपनी पीड़ा को छिपाये रहती थी।

पूरा साल बीत गया, पर वह दृश्य भुलाये नहीं भूलता। कोई दो महीने बाद मैं उस पगडंडी से घर लौट रहा था। दो महीने पहले आम के पेड़ पर दूसरे साल के लिये बौर आने लगे थे। आज तो वह एक बार फिर आमों से लदा हुआ था...ठीक पिछले साल की तरह। पर पिछले साल देश का यह पहला आम का पेड़ कंटीले तारों से घिरा हुआ नहीं था। एक ओर नदी और दूसरी ओर शक्कर कोठी के मालिक का दूसरा आलीशान घर था जो ऊँची दीवारों के भीतर था और जिसकी रखवारी के लिये दो बंदूकधारी मलगासी रखवार तो थे ही, साथ में तीन खूंख्वार कुत्ते भी थे। जब मैंने इस स्थान पर आम का पौधा लगाना चाहा था, उस समय मालिक की दूसरी हवेली की जगह कंटीली झाड़ियाँ थीं, इन्हीं दिनों हम ही मजदूरों के द्वारा उस जंगल की कटाई और सफाई हुई थी।

आम के पेड़ के फल आने से कुछ ही महीने पहले मालिक की यह नयी हवेली बनी थी। उस घटाटोप कजराली दोपहर में आम के पेड़ वाले खेत से कुछ ही दूरी पर मोहन भी अपनी माँ की तरह गन्ने काटने में मेरी मदद कर रहा था। मुझे लगता, वह मेरा दूसरा पाँव था। मोहन को अपनी बगल में पाकर मैं उसी पहले जैसे हौसले से ईखों को काटता रहता। जब अपना बायाँ पाँव सही-सलामत था। मेरे हिस्से गन्ने की जो कतार आयी थी वह बहुत ही घनी थी और मंगरू सरदार मुझे यह आदेश दे गया था कि अगर शाम छः बजे तक मैंने सारे गन्ने नहीं काटे तो सप्ताह की तनख्वाह से एक दिन की तनख्वाह काट ली जायेगी। उस उमस भरी दोपहर में मजदूरों के लिये पानी की जो बाल्टी रखी हुई थी वह खाली हो चुकी थी। मोहन हम सभी मजदूरों के लिये नदी से पानी लेने गया, पर शाम को अंधेरा छा जाने के बाद भी नहीं पहुँचा। बस्ती के सभी लोग मिलकर उसकी तलाश में लग गये थे।

बलदेवा हम तोके बात बताई जात बानी ऊ कोई दूसरे नै जाने पाई। मैंने पाँच बजे के करीब मोहनवा को कंटीले तारों की घिरावट को पार करके आम के पेड़ की ओर जाते देखा था। हम आवाज देके ओके रोके चहली पर ऊ हमरा नै सुन पैलक।

उसी समय सुब्रमण्यम तथा दूसरे साथियों के साथ हम लोगों ने हाथों में मशाल लिये आम के पेड़ और नदी के इलाके को छान मारा। मालिक की हवेली की ओर बढ़ना चाहा पर कुत्तों को अपनी ओर लपकते पाकर हमें पीछे लौट जाना पड़ा। तीन दिन बाद आम के पेड़ वाले इलाके की बढ़ आयी झुरमुट की सफाई करते हुए एक मजदूर को मोहन की फतूही गुदड़ी-गुदड़ी में लाश मिली।

दूसरे दिन जब प्रवासी-रक्षक अपने दौरे पर कोठी पहुँचा तो मैंने उसे सारी बातें बताईं। उसने मुझे अपने साथ लिये शक्कर कारखाने के पास मालिक के दफ्तर में पहुँचकर उससे जवाब तलब करना चाहा। बोला

बताया जा रहा है कि आपके तीनों कुत्तों ने इस मजदूर के बेटे पर आक्रमण किया था।

इसमें मैं क्या कर सकता हूँ ? मैंने तो उसे मेरे अहाते में घुसकर आम चुराने को नहीं कहा था।

मैंने हाथ जोड़े कहा था

मालिक ! वह आम का पेड़ मेरा रोपा हुआ...।

गोरे मालिक से पहले उसके पास खड़ा मंगरू सरदार दहाड़ उठा

अपने बाप की जमीन में बोया था क्या ?

जाते-जाते प्रवासी-रक्षक बोल रहा था

कुत्तों का काटा बच्चा अपने घावों के साथ घर तो लौटता...।

गोरा मालिक अपनी कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया।

यह मेरा दफ्तर है, खोई हुई चीजों का कबाड़ा नहीं।

मैं इस मामले को पुलिस के हाथ सौंपने जा रहा हूँ। मुझे शक है कि आपके कुत्तों ने ही बच्चे की जान ले ली हो।

मामला पुलिस में दर्ज तो हुआ पर साल होने को है, कभी कोई जांच-पड़ताल हुई ही नहीं।

आज मैं आम के पेड़ के सामने खड़ा होकर अपने मोहन की याद में आँखों से आँसू का बह जाना नहीं रोक सका। कंधे पर बन्दूक लटकाये मंगरू सरदार मेरे पास से होते हुए उस जगह पर पहुँचा जहाँ गाँव के बच्चे तारों की जाली थामे अहाते के भीतर आमों से लदे पेड़ को टुकुड़-टुकुड़ देख रहे थे। आम के पेड़ की छाया में मालिक के तीन बच्चे आम खाते हुए मजदूर के बच्चों को ललचाते रहे।

सरदार के डांटने पर मजदूरों के बच्चे गाँव की ओर भाग उठे। सुब्रमण्यम की बात याद आ गयी।

तुम्हें आम की गुठलियों को समन्दर में फेंक देना चाहिये था।

इसी के साथ मुझे चाँदो की आवाज की प्रतिध्वनि भी सुनाई पड़ी।

चाँदो को आज भी विश्वास था कि उसका बेटा घर जरूर लौटेगा और अपने बाप के रोपे हुए आम के पेड़ से आम अवश्य खायेगा।

बच्चों को खदेड़कर मंगरू सरदार मेरे पास से गुजरा। ठिठक कर पूछा

आम खाने का मन ललक रहा है क्या ?

मैंने भी उससे पूछा

तो यह सही है कि तुम्हीं ने मोहन पर खूंखार कुत्तों को लहकाया था ?

मंगरू सरदार की बंदूक उसके कंधे से सरक कर उसके हाथों में आ गयी।

मैंने आम के पेड़ की ओर देखा। मुझे लगा कि उसकी एक डाली से मंगरू की लाश झूल रही थी।

l

पृष्ठ 20 का शेष...

हिन्दी समाचार प्रसारण तथा मधेश की कला, संस्कृति एवं अवस्था पर आधारित दैनिक दो घण्टे की हिन्दी सेवा प्रसारण की व्यवस्था हो।

7. सरकारी मुखपत्र गोरखापत्र की तरह हिन्दी में भी एक सरकारी दैनिक मधेशवाणी का प्रकाशन हो।
8. राष्ट्रीय प्रतिभा पुरस्कार प्रतिवर्ष नेपाल के हिन्दी साहित्यकारों एवं कलाकारों को भी दिया जाय।
9. लोक सेवा आयोग में हिन्दी का अनिवार्य रूप में समावेश किया जाय।
10. सम्पूर्ण तराई के माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षक की नियुक्ति के साथ ही राजधानी काठमाण्डू से बाहर जनकपुर धाम स्थित राम स्वरूप राम सागर बहुमुखी कैम्पस में हिन्दी की स्नातकोत्तर कक्षाओं का शीघ्र संचालन किया जाए।
11. जनकपुर बौद्धिक समाज द्वारा आयोजित प्रथम से सातवें नेपाल राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलनों पर आधारित पुस्तक का शीघ्र प्रकाशन किया जाए तथा नेपाल हिन्दी प्रतिष्ठान कोष का निर्माण कर हिन्दी साहित्य प्रकाशन को निरंतरता दी जाए।

राष्ट्रीय विचार गोष्ठी

सप्तम नेपाल राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन के प्रथम दिन 12 अक्टूबर (26 आश्विन) को दूसरा सत्र राष्ट्रीय सभा के सदस्य माननीय राम जीवन सिंह के प्रमुख आतिथ्य एवं प्रा॰ भाग्य नाथ प्रसाद गुप्ता के, समापतित्व में हुआ।

नेपाल के हिन्दी साहित्यकार विषयक कार्यपत्र के प्रस्तोता राजेश्वर नेपाली और टिप्पणीकार रामस्वार्थ सिंह थे तो दूसरे पत्र नेपाल में हिन्दी और प्रजातन्त्र के प्रस्तोता साहित्यकार जयनारायण झा, जिज्ञासु रामस्वार्थ सिंह और डॉ॰ नवीन मिश्र थे तथा टिप्पणी रुद्र नारायण भारती ने की।

वृहत कवि सम्मेलन

दो दिवसीय सम्मेलन के अन्त में साहित्यकार स्वामी रामटहल शरण वेदान्ती के सभापतित्व तथा अयोध्या से पधारे सन्त स्वामी प्रेमानन्दाचार्य के प्रमुख आतिथ्य में वृहत कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ था।

सहभागी कवियों के नाम–रामटहल शरण वेदान्ती, राजेश्वर नेपाली, रामस्वार्थ ठाकुर, युगल किशोर लाल, रामस्वार्थ सिंह भारद्वाज, श्रीराम सिरज, प्रा॰ भाग्यनाथ प्रसाद गुप्ता, जयनारायण जिज्ञासु, रामभरत शाह, रुद्रनारायण भारतीय, रुद्र नारायण झा, अयोध्यानाथ चौधरी, अवध किशोर प्रसाद, ओमकुमार झा, ताराकान्त झा, अनुज कुमार मिश्र, महेशवर राय, चन्द्रकान्त झा, संदीप कुमार चौधरी, रमेश प्रसाद मिश्र, विनय बन्धु, डॉ॰ श्रीप्रकाश शुक्ल (भारतीय राजदूतावास) बिल्टू चौधरी मधुवनी, प्रेमानन्दचार्य अयोध्या, गिन्नीलाल प्रसाद छपरा।

सम्मानित साहित्यकार

नेपाल में हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान पहुंचाने के लिए सम्मेलन में 12 विशिष्ट साहित्यकारों को सम्मानित किया गया। सम्मानित साहित्यकारों के नाम इस प्रकार हैं सह प्रध्यापक डॉ॰ नवीन मिश्र और उप-प्राध्यापक जय नारायण सिंह त्रि॰ वि॰ रुद्र नारायण भारती, धनुषा, गोपाल अस्क-वीरगंज, श्रीराम सिरज सिरहा, महेश्वर राय, पूर्व शिक्षा अधिकारी, अयोध्यानाथ चौधरी, डॉ॰ रेवती रमण लाल, रामहृदय प्रसाद जनकपुर धाम, कवि सुरेश पाण्डेय, गणेश नेपाली, और कंदर्प नारायण लाल महोत्तरी।

l

djfc;kbl dfork vkj ekfVu dkVj

F अक्षय कुमार

अंग्रेजी साहित्य के विशाल जगत में कैरेबियाई साहित्य अपेक्षाकृत एक नई घटना है। हालांकि यह साहित्य मुश्किल से 250 साल पुराना है, लेकिन निरंकुशता और अन्याय के लंबे इतिहास तथा जीने की अदम्य लालसा से उत्पन्न मानवीय मूल्यों का इसका आभिर्भाव अप्रतिम तथा बेजोड़ है।

कैरेबियाई क्षेत्र को हम लोग अधिकतर वैस्टइंडीज और उसकी प्रसिद्ध क्रिकेट टीम के संदर्भ में जानते हैं। वैसे इस क्षेत्र में लातिन अमरीकी मुख्य भूमि और ट्रिनिडाड एवं टुबैगो, गुयाना, बारबडोस, बेलाइज, जमैका तथा अन्य द्वीपीय देश आते हैं। भौगोलिक और ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टियों से यह यूरोपीय, अफ्रीकी और अमरीकी महाद्वीपों के मिलन स्थल के रूप में उभरा है। बाद में, भारतीयों के यहां आगमन के साथ ही भारतीय उपमहाद्वीप भी भौगोलिक रूप से तो नहीं; बल्कि भावात्मक रूप से अवश्य ही इस फेहरिस्त में जुड़ गया। इस प्रकार आज कैरेबियाई साहित्य अंग्रेजी, पश्चिम अफ्रीकी, उत्तर अमरीकी और काफी हद तक भारतीय जैसी चार प्रमुख परंपराओं के परस्पर संबंधों का प्रतिनिधित्व करता है।

भारत में हम लोगों को वी॰ एस॰ नयपाल और उनके उपन्यासों की कैरेबियन संस्कृति की एक झलक की ही जानकारी है, लेकिन इस क्षेत्र की काव्य परंपराओं के बारे में, विशेषकर हम भारतीयों को अधिक जानकारी नहीं है।

बात 1988 की है, जब मुझे तीन कैरेबियाई देशों ट्रिनिडाड एवं टुबैगो, गुयाना और सूरीनाम की यात्रा पर जाने का मौका मिला। इस छोटी-सी यात्रा से मुझे इस क्षेत्र की काव्य संपदा में झांकने का मौका मिला। यह मौखिक काव्य और साहित्य परंपरा गुलामों के आगमन के जमाने से चली आ रही है और यह उनकी वेदना और पीड़ा को मुखरित करने के साथ-साथ कभी-कभी उनकी खुशियों को भी वाणी प्रदान करती है, और मेलों-ठेलों तथा अन्य उत्सवों के दौरान इनमें फूट पड़ती हैं। साहित्यिक परंपराओं का उद्‌भव 19वीं शताब्दी और उसके बाद से देखा जा सकता है। मौखिक परंपरा, आमतौर परंपरा, आमतौर से बोलचाल के मुहावरे में है। लिखित, साहित्य परंपरा यद्यपि तत्कालीन श्वेत शासकों और जमींदारों द्वारा आरम्भ की गई थी, लेकिन बाद में यह अश्वेतों तथा अन्य स्थानीय समूहों तक पहुंच गई। इस साहित्य में बोलचाल के मुहावरे, आधुनिक अंग्रेजी और इस इलाके में बोले जाने वाली अन्य भाषाओं का अनूठा मिश्रण देखने को मिलता है।

फ्रांसिसी विलियम्स (1700-1770), शायद इस परंपरा के पहले अश्वेत कवि थे। उन्हें, विलियम्स को ड्यूक ऑफ मांटेगू ने यह सिद्ध करने के लिए चुना था कि किसी नीग्रो को भी श्वेत व्यक्ति की भांति शिक्षित किया जा सकता है। उन्हें पढ़ने के लिए इंग्लैण्ड भेजा गया। लेकिन लौटने के बाद उन्हें वह सरकारी नौकरी नहीं मिल सकी जिसका कि उनसे वायदा किया गया था। अंततः उन्होंने अश्वेत बच्चों के लिए एक स्कूल खोल लिया। उनके बाद, साहित्य परंपरा में कवियों की एक खासी ज मात आई। लेकिन 1940-50 की अवधि में मार्टिन कार्टर ने अपनी संवेदनशीलता और भाषा के संतुलित; परन्तु तीखेपन से कैरेबियाई कविता को एक नया अर्थ और दिशा प्रदान की और इसे अंतर्राष्ट्रीय मंच पर स्थापित कर दिया। गुयाना के स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने स्वयं एक अग्रणी भूमिका निभाई और वे अपनी गतिविधियों के लिए जेल भी गए। उनकी कविताओं ने उस दौर के नौजवानों को प्रेरित किया। न केवल गुयाना में बल्कि कैरेबियाई देशों में कैरेबियाई कवियों की बाद की पीढ़ी ने भी उनकी काव्य की उत्कृष्टता के लिए उन्हें आदर्श मानना शुरू कर दिया।

मार्टिन कार्टर को आज के विद्रोही कवियों का एक महत्वपूर्ण अग्रज बताते हुए कैरेबियाई कविता की अध्येता एवं विख्यात मानव विज्ञानी पाउला बर्नेट कहती हैं

''पचास के दशक के ब्रिटिश गुयाना के एक राजनैतिक कैदी, कार्टर ने उपनिवेशवाद आंदोलन को एक काव्यमय वाणी और एक नैतिक शक्ति प्रदान की।'' वे कहती हैं, ''हमारे जमाने के घृणित माहौल का वर्णन करते समय कार्टर अपने आपको आलोचना से अलग रखने की कोशिश नहीं करते हैं, फिर भी उनकी अभिव्यक्ति में आदर्शवाद की त्रासद निराशा रूपांतरित होती है, क्योंकि नैतिक सरोकारों वाले सृजन का कार्य भी अपने आप में एक रचनात्मक प्रक्रिया होती है। जिस कोमलता से कार्टर, झींगा हमारी गिनती है, कह पाते हैं, उससे आशा की एक किरण उदय होती है। कार्टर करुणा में भी कड़वी सच्चाई का पुट देते हैं।'' सुश्री बर्नेट के अनुसार ''हाल की कुछ असाधारण कृतियों में मानक अंग्रेजी और देशी बोली के एक साथ इस्तेमाल के प्रयोग किए गए हैं। मार्टिन कार्टर, लेरोय क्लार्क और केंडल हिप्पोलाइट अपनी कृतियों में मानक परंपरा के भीतर मौखिक परम्परा की खोज की अपेक्षाकृत एक नई खोज हैं (ठीक वैसी ही जैसी कि अमरीका की कोलंबस की खोज थी), यह शायद इस शताब्दी की एकमात्र सर्वाधिक महत्व की काव्य घटना है। कैरेबिया के कवि एक ऐसी काव्य भाषा खोजने के विश्वव्यापी प्रयास के अगुआ हैं जिससे अधिकांश लोगों के साथ संवाद कायम किया जा सके और जो एक अभिजात्य पहल मात्र न होकर एक ऐसी भाषा हो जो सरल होने के साथ-साथ गूढ़ भी हो।''

कार्टर की कविताएं जर्मन, जापानी, स्पेनी, चीनी और रूसी भाषाओं सहित कई अन्य भाषाओं में अनुदित हो चुकी हैं। हिन्दी में इन कविताओं का अनुवाद करने का यह प्रथम प्रयास है।

भूख का विश्वविद्यालय

मूल : मार्टिन कार्टर (गयाना के राष्ट्रकवि)
अनुवाद : अक्षय कुमार

दूर-दूर तक फैला
यह सुनसान मैदान
यह रेगिस्तान,
क्या है यह भी कोई तीर्थ स्थान ?
कोई शिक्षालय ?
हां, यही है भूख का विश्वविद्यालय।
भूख ही सिखाती है जीवन का पाठ यहां।
निरंतर भटकते रहने की मर्यादा
बन जाती है स्वयमेव
एक लम्बी तीर्थ यात्रा।

रेगिस्तान
जहां छाप दिए हैं, दूर-दूर तक
भूख ने अपने पैरों के निशान।
झुक गई है हरे-भरे पेड़ों की कमान।
जिन्दगी रेत की शक्ल में
उठाती है अपना सिर और
पटकती है बार-बार
जमीन पर।

कहीं नहीं है छांव का नामोनिशान।
छतें भी सभी हो गई हैं भस्म
दुखों की ज्वाला में।

वक्त की मार खाए
दहशत भरी आंखों से
पुराने पुल को निहारते
कब्र में दफना अपने आत्मसम्मान को,
परिक्रमा करते उसकी,
चले आ रहे हैं, लोगों के झुंड के झुंड।
ऊंट के पदचिह्नों के सहारे
कदम-दर-कदम।

वे चले आ रहे हैं
सुदूर बाढ़ के गांव से।
उनकी मंजिल न हवा है
न जमीन।

ऊंट की तरह ही
नंगे हैं उनके जिस्म।
उनकी देह बन गई है इस्पात की
एक निर्जीव कमान
जिस पर साधे जा सकते हैं केवल दो ही बाण
एक भूख का,
दूसरा प्यास का।
दो ही मौसम याद हैं उन्हें
एक अकाल का
दूसरा बाढ़ का।

कौन हैं ये लोग ?
घुटनों तक धंसे हैं जमीन में
जिनके शरीर।
कौन हैं ये लोग ?
जिनकी आवाज लील गये हैं बियाबान
परछाई भी छोड़ गई है जिनका साथ
अविश्वास पर से भी उठ गया है
जिनका विश्वास।

वे चले आ रहे हैं
साल-दर-साल
कीचड़ में धंसाये अपने पांव।
एक रंग हो गए हैं उनके जिस्म
पांव के नीचे जमे गंदले पानी के साथ।
वे, जो अंधे चमगादड़ों की तरह
समुद्र की उफनती लहरों की
आवाज से डरकर
भाग रहे हैं इधर-उधर
महज दुबकने के लिए किसी एक कोने की
तलाश में।
उफ, कितना लम्बा है
यह सफर।
कितनी लम्बी है
आदमी की जिन्दगी।
कितनी बेपनाह हैं
उसकी मुसीबतें।

जिन्दगी
क्या महज हवा है
जिसमें यादों के लम्बे काफिले
महज धूल बनकर उड़ जाएं ?
जिन्दगी क्या
बरसात का कोई मौसम है
जिसमें मेंढ़क
उनींदी आंखों में नींद को
तलाशते-तलाशते खामोश हो जाएं ?

जि न्दगी क्या है
म्हज मुा स्समा है
धुआंरहित टूटी चिमनियों का
उजड़ी झोंपड़ियों का
या जंग खाते लोहे की
अकूत ढेरियों का ?

वे चले आ रहे हैं
लम्बी कतारों में।
दूर-दूर तक फैले एक शहर की तरफ।
आसमान का झूलता चांद सुनहला
उन्हें एक सिक्के की तरह दिखाई पड़ता है।
क्या उनके सूखे जिस्म सचमुच संभाल पाएंगे
इसका बोझ ?
जिस्म जो रह गए हैं
सिर्फ कंकाल
जिस्म जो पनाह दे रहे हैं
बीमारियों को।
नियति स्वयं, यथार्थ की पथरीली
चट्टानों पर लगातार
मार-मार कर अपनी चोंच
हो गई है लहूलुहान।

उफ, कितना लम्बा है यह सफर।
कितनी लम्बी है आदमी की जिन्दगी।
मंजि ल बहुत दूर है
उफ, हो गई है हवा कितनी दर्द
एकदम से जिस्म गला देने वाली
पांव से नीचे जमी यह कीचड़।
वे चले आ रहे हैं
समुद्र की अथाह जलराशि पर उमड़ते
पक्षियों की तरह।
किसी भी नाव को देखते ही
तेज होने लगती है उनके पंखों की
फड़फड़ाहट
लेकिन सूर्यास्त या उत्पीड़न
जकड़ गया है घायल दिगन्त हो
नीली पट्टियों में।
धूल कणों में बसकर
अत्याचार की आग
फैल गई है समूचे क्षितिज पर।
समुद्र की लहरों का संगीत
कर रहा है लगातार
धरती पर, वार पर वार
और जहरीले झाग के रूप में
छोड़ता आ रहा है
रेत पर अपनी झुर्रियों के निशान।

रात के काले सायों के
लगातार ऊपर-नीचे
तलाशी लेते हाथ
निर्वसन कर जाते हैं औरतों की
अस्मिता को।
ढोल की थाप तेज होकर
पड़ जाती है मंद
और फिर हो जाती है
अचानक गुम।
आदमी थककर सो जाता है
चुपचाप।

भोर होते ही
मुर्गे अपनी बांग का
फिर बजा देते हैं
एक बिगुल।

फिर चल पड़ते हैं लोग
हां, ये हैं वही लोग जिन्होंने
एकदम तड़के उठकर
चांद को मरते देखा था,
ठीक भोर के वक्त।
हां, ये वही लोग हैं
जिन्होंने शंखनाद सुना था
सुनी थीं घंटियों की ध्वनियां।
लेकिन,
जिनकी अपनी कोई आवाज नहीं
बियाबान में भी।
जो खो बैठे हैं अपनी परछाई
अविश्वास पर से भी उठ गया है
जिनका विश्वास।

हां, लम्बा है उनका सफर
लेकिन, जिन्दगी ?
वह भी कुछ कम नहीं।
सामने पड़ा है खुला मैदान,
बंजर,
परन्तु तमाम संभावनाओं से भरपूर।

l

ए-46, पंडारा रोड,
नई दिल्ली

lkfu;k xka/kh % jktuhfr dh ifo=k xaxk dk yksdki.k

विगत 8 दिसम्बर, 2004 को तीन मूर्ति भवन सभागार में हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं अमेठी समाचार के संपादक श्री जगदीश पीयूष द्वारा सम्पादित 'सोनिया गांधी : राजनीति की पवित्र गंगा' नामक ग्रन्थ का विमोचन भारत के गृहमंत्री माननीय श्री शिवराज पाटिल ने किया।

बैठक के प्रारम्भ में अतिथियों का स्वागत करते हुए पूर्व सांसद एवं प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. रत्नाकर पाण्डेय ने कहा कि सोनिया

बाएं से सर्वश्री सुबोध का सहाय, मोहसिना किदवई, शीला दीक्षित, अर्जुन सिंह, जगदीश पीयूष, शिवराज पाटिल, डॉ. नामवर सिंह, आर. के. धवन, डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, कृपाशंकर सिंह, नगमा, राकेश पाण्डेय एवं अरुण सिंह मुन्ना

ाग
ात
्क
र्ण
जन
सर
ाक

उल्लेखनीय है कि श्री जगदीश पीयूष द्वारा सम्पादित इस पुस्तक में भारत के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं एवं विश्व के संचार माध्यमों में श्रीमती सोनिया गांधी द्वारा भारत के प्रधानमंत्री के महत्वपूर्ण पद को त्यागने पर प्रकाशित विचारों को संकलित किया गया है। हिन्दी साहित्य में अपने ढंग का यह एक अनूठा प्रयास है। पुस्तक में सम्पादकीय और अन्य लेखों के अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण लेख और कविताएं भी सम्मिलित की गई हैं।

सुप्रसिद्ध कवि श्री बुद्धिनाथ मिश्र के मंगलाचरण से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ।

महाराष्ट्र के पूर्व गृहमंत्री श्री कृपाशंकर सिंह ने इस समारोह की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए कहा कि श्रीमती सोनिया गांधी त्याग और बलिदान की प्रतिमूर्ति हैं। उन पर पुस्तक सम्पादित कर श्री जगदीश पीयूष ने एक महान कार्य किया है।

ग्रंथ के विषय में विचाराद्बोधन करते हुए जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक डॉ. नामवर सिंह ने कहा कि इस पुस्तक की सामग्री चयन करते हुए उन्होंने भारत के लोकमत को सम्मिलित किया है। यह किसी

Mk- ekgudkr xkre dk vfHkunu lekjkg

उद्‌भव संस्था द्वारा बाल भवन पब्लिक स्कूल, दिल्ली में हॉलैण्ड में बसे भारतीय मूल के विद्वान प्रो. मोहनकांत गौतम का अभिनंदन समारोह आयोजित किया गया। कार्यक्रम का उद्‌घाटन डॉ. रत्नाकर पाण्डेय ने किया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय थे। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री हिमांशु जोशी ने की।

इस सुअवसर पर हॉलैण्ड के हिंदी साहित्यकार, विचारक और यूरोपियन हिंदी समिति के अध्यक्ष प्रो. मोहनकांत गौतम ने कहा कि मातृभाषा भूलने का अर्थ है कि उस देश अथवा संस्कृति की मौत। इसलिए भारतवासियों को चाहिए कि वे हिंदी न भूलें। उन्होंने कहा कि विदेशों में हिंदी भाषा को विशेष स्थान मिला हुआ है। विश्व में इसके प्रचार और प्रसार के लिए प्रत्येक देशवासी अपनी पूरी ताकत लगा दे। यही सच्ची देशभक्ति होगी।

इस अवसर पर कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने कहा कि हिंदी भाषा प्रेम है, जीवन है, दर्शन है और सबसे बड़ा देश प्रेम है। उन्होंने कहा कि यह भाषा ही है जिसने देश की संस्कृति को बचाकर रखा हुआ है। यह प्रशंसा के योग्य है कि प्रवासी भारतीयों ने विषय परिस्थितियों में भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में भरपूर योगदान किया है। पूर्व सांसद व साहित्यमनीषी डॉ. रत्नाकर पाण्डेय ने पिछले 57 वर्षों से हिंदी की दुर्दशा पर भी क्षोभ जताया। इसके पूर्व कार्यक्रम का शुभारंभ दीप प्रज्वलित कर किया गया। संस्था की ओर से समस्त अतिथियों का फूलमालाओं से स्वागत कर उन्हें स्मृति चिन्ह भेंट किया गया। कार्यक्रम में प्रमुख रूप से साहित्यकार अमरनाथ अमर, प्रवासी संसार के संपादक राकेश पाण्डेय, बी. बी. गुप्ता, अरुण प्रकाश ढौंडियाल, सदस्य हिंदी अकादमी व संस्था के महासचिव विवेक गौतम व स्कूल के संस्थापक जी. सी. लगन आदि उपस्थित थे।

बाएं से सर्वश्री जी.सी. लगन, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, हिमांशु जोशी, डॉ. मोहनकांत गौतम, डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, विवेक गौतम व राकेश पाण्डेय

एक पार्टी के नहीं वरन् देश के विविध विचारों का संकलन है। यह किसी व्यक्ति का नहीं, मूल्य का अभिनंदन है। त्याग का मानदंड एक ऐसी महिला ने उपस्थित किया जिसे लोग विदेशी मूल का बताते हैं। वस्तुतः वे भारतीय मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं। जो लोग भारत गौरव का नारा लगाते हैं, वे भारतीय मूल्यों को भूलते जा रहे हैं।

पुस्तक का प्रकाशनोद्‌घाटन करते हुए भारत सरकार के गृहमंत्री माननीय श्री शिवराज पाटिल ने कहा कि त्याग और संघर्ष मानव जाति की वास्तविक शक्ति है। यह पुस्तक इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसमें एक ऐसे व्यक्तित्व के बारे में विचार व्यक्त किया गया है जो कर्मयोग में विश्वास करती हैं और फल की अभिलाषा नहीं रखतीं। यह पुस्तक किसी व्यक्ति का गुणगान नहीं, बल्कि सोनिया जी द्वारा किए गए संघर्ष की गौरवगाथा है।

समारोह के मुख्य अतिथि भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्री माननीय श्री अर्जुन सिंह ने कहा कि सोनिया गांधी हमारी सेनापति हैं और हम सैनिक के रूप में उनसे प्रेरणा पाकर संघर्ष और सामाजिक सद्‌भाव का काम कर रहे हैं।

दिल्ली की मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित ने कहा कि इस पुस्तक के संपादक श्री जगदीश पीयूष ने एक ऐतिहासिक कार्य किया है जिसके लिए मैं उनकी शुक्रगुज ार हूं।

इस अवसर पर श्री मोहसिना किदवई ने पीयूष जी के प्रति शुक्रिया अदा करते हुए कहा कि सोनिया जी का व्यक्तित्व अनुकरणीय है और हमें उनसे शिक्षा लेनी चाहिए।

समारोह के अंत में प्रवासी संसार के संपादक श्री राकेश पाण्डेय ने धन्यवाद ज्ञापित किया। इस अवसर पर एक कवि सम्मेलन आयोजित किया गया जिसका संयोजन यूरोपीय हिंदी परषिद् के अध्यक्ष डॉ. मोहन कां. गौतम ने तथा उद्‌घाटन प्रसिद्ध पत्रकार एवं सांसद सदस्य श्री राजीव शुक्ल ने किया। कवि सम्मेलन की अध्यक्षता भारत में मॉरीशस की राजदूत श्रीमती ऊषा द्वारिका ने की। कवि सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रमुख कवि थे श्री विकल साकेती, श्री आद्याप्रसाद उन्मत्त, श्री कैलाश गौतम, श्री बुद्धिनाथ मिश्र, श्रीमती बरखा सिंह एवं सुश्री सुमन दुबे, आदि।

l

बरसों पहले प्रेमचंद और कन्हैयालाल, माणिक लाल मुंशी ने एक ऐसी पत्रिका की कल्पना की थी,
जो देश की सारी भाषाओं के साहित्य का आईना बन सके।

इसी सपने को साकार करती साहित्य अकादमी की द्विमासिक पत्रिका

समकालीन भारतीय साहित्य

एक पत्रिका जो पूरी किताब है
आप इसका हर अंक पढ़ना ही नहीं, सुरक्षित भी रखना चाहेंगे!

G क्योंकि इसमें देश की सभी भाषाओं के समकालीन साहित्य के रचनात्मक तेवर देखे जा सकते हैं।

ह सिर्फ हिन्दी की नहीं, हिन्दी के माध्यम से सारी भाषाओं की पत्रिका है।

सके हर अंक में जीवंत नाटक, दर्जन भर कहानियां, तीस-पैंतीस कविताएं, पुस्तकों से परिचय, क लेख, यात्रा, संस्मरण, उपन्यास-अंश होते हैं।

बड़े पृष्ठ हर बार किसी महत्वपूर्ण कलाकार के चित्रों और रेखाचित्रों के साथ अत्यंत आकर्षक, ो साज-सज्जा में।

ह पत्रिका अंक 113 (मई-जून 2004) के साथ अपने 24 वर्ष पूरे कर चुकी है।

ा समय काटने के लिए नहीं, अपितु अपना समय जानने के लिए है।

दे आप चाहें तो नमूने के तौर पर पुराने अंक की एक प्रति भेजी जा सकती है।

मूल्य : 25 रुपये

शुल्क दर : एक वर्ष (6 अंक) : 125 रुपये, तीन वर्ष (18 अंक) : 350 रुपये

भुगतान केवल **सचिव, साहित्य अकादमी** के नाम से भेजें। वार्षिक शुल्क मनीऑर्डर/
बैंक ड्राफ्ट/नक द द्वारा इस पते पर भेजें

सचिव, साहित्य अकादमी

विक्रय विभाग, स्वाति मंदिर मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 23745297, 23364207

ई-मेल : sahityaakademisales@vsnl.net

वेबसाइट : http://www.sahitya-akademi.org